षष्ठ अध्याय

जितेन्द्र श्रीवास्तव की स्त्री विषयक कविताओं की भाषा और उनका शिल्प

षष्ठ अध्याय

सामान्य रूप से काव्य भाषा को लेकर यह मान्यता रही है कि काव्य भाषा, सामान्य भाषा से अलग होती है। काव्य भाषा सामान्य भाषा की तुलना में सुसंस्कृत, परिमार्जित, स्वच्छंद, लचीली, जीवंत और प्रभावी होती है। अनुभूति को संप्रेषणीय बनाने के लिए कवि भाषा के नए-नए प्रयोग भी करता है। कवि के लिए आवश्यक तत्व है- संप्रेषणीयता। इस उद्देश्य के लिए वह सामान्य भाषा से काव्य भाषा को विचलित कर देता है। शब्द के स्तर पर उपलब्ध अनेक विकल्पों में से वह ऐसे विकल्प का चयन करता है, जो उसकी अनुभूति को सहजता से व्यक्त करने में समर्थ होता है। काव्य भाषा में चित्रोपम तथा बिम्ब विधायिनी शक्ति भी होती है। सफल कवि वह है, जो दृश्य का इस प्रकार वर्णन करें कि पाठक की कल्पना के समक्ष उसका चित्र उपस्थित हो जाए। काव्य भाषा में कोमलता, सुकुमारता तथा नाद-सौंदर्य विद्यमान होता है, साथ ही उसमें रसानुकूल वर्ण-योजना भी की जाती है।

हिन्दी साहित्य में आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में अपने-अपने परिवेश के अनुसार अपनी-अपनी भाषा में कवियों ने कविताओं का सृजन किया है। जैसे आदिकाल में काव्य की भाषा डिंगल और पिंगल रही। मध्यकाल में काव्य की भाषा ब्रज और अवधी रही। उसी प्रकार आधुनिक काल में काव्य की भाषा खड़ी बोली हिंदी रही है। आज आधुनिक काल में साहित्य के अनेक कवि अपनी बात को जन भाषा में ही कहना उचित मानते हैं। क्योंकि उसमें स्वाभाविक अभिव्यक्ति हो सकती है। जितेन्द्र श्रीवास्तव एक ऐसे कवि हैं जो अपनी कविताओं में जन भाषा का उपयोग करते हैं। जितेन्द्र श्रीवास्तव गोरखपुर के रहने वाले है इस कारण उन्होंने भोजपुरी में भी साहित्य का सृजन किया है और हिंदी में भी। एक कवि के लिए कविता में जन भाषा का उपयोग नितांत आवश्यक है क्योंकि उसी भाषा

में वह अपने भावों को और आम जनता के भावों को सहजता से अभिव्यक्त कर सकता है।

ऐसा कवि को जो गरीब किसान, मजदूर और निम्न मध्यमवर्गीय जनसमूह तथा स्त्री की पीड़ा को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखता है, एक स्वस्थ मानवीय जीवन जीने के उनके उत्साह को सशक्त रूप में व्यक्त करता है। उन्हें शोषित-पीड़ित रखने वाली व्यवस्था के असली स्वरूप को उनके सामने नग्न करता है, उनके भ्रमों को तोड़कर तथा उनके साहस को जगाकर उन्हें सामूहिक संघर्ष में जुट जाने के लिए तैयार करता है, इस दृष्टि से जितेन्द्र श्रीवास्तव अपनी कविताओं के माध्यम से एक जनवादी कवि सिद्ध होते हैं।

एक कवि को जन भाषा का सहारा लेने की इसीलिए जरूरत पड़ती है कि वह अपनी बात को उन लोगों तक पहुंचाना चाहता है जिनका साहित्य से बहुत थोड़ा संपर्क होता है। यदि एक लेखक चाहता है कि गरीब तथा कम पढ़े लिखे लोग उसकी रचनाओं को पढ़कर या सुनकर उनसे प्रभावित हो सके तो उसे उनकी भाषा को अपनाना होगा तथा साहित्यिक भाषा की उस परंपरा को तोड़ना होगा। जिसके अनुसार साहित्य कुछ गिने-चुने लोगों को रसविभोर करने की वस्तु बनकर रह जाता है। विशेषकर उन कविताओं में जो किसी न किसी आंदोलन के समय किसान, मजदूर और स्त्री को संबोधित करके लिखी जाती है। कवि को यह कोशिश करनी होगी कि वह अपनी बात को बहुत ही सुलझे हुए और सरल ढंग से कहे और लोक में प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियो तथा लोक कथाओं का सहारा ले। इस प्रकार की रचनाओं का एक निश्चित उद्देश्य होता है। यहां कवि किसी स्थिति का अन्वेषण तथा सूक्ष्म विश्लेषण नहीं कर रहा होता। परंतु वास्तव में यहां कुछ ऐसे ठोस निष्कर्षों को तथ्यों को, सत्य को, वास्तविकता को जनता के सामने रखना चाहता है। जिन्हें वह स्वयं पूर्ण विश्वास के साथ प्रतिपादित करता है और उन्हें जनता भी सहजता से समझ सकती है। क्योंकि वह उसके अपने आधारभूत अनुभवो की कसक लिए हुए होती हैं। इस प्रकार की रचनाएं वास्तव में तत्कालीन

आंदोलन में संघर्ष का एक हथियार बन जाती है। इस प्रकार की अच्छी जनवादी रचनाओं के लिए जरूरी है कि कवि का भावबोध और चिंतन पूर्णतया जनवादी रूप धारण कर चुका हो और उनकी निम्न मध्यमवर्गीय निजबध्धता, संशयात्मकता आदि संघर्ष के ताप के कारण मिट चुकी हो। नागार्जुन जैसे कवि ने इस प्रकार की कई अच्छी रचनाएं लिखी है। समकालीन कवियों ने अपनी भाषा में स्त्रियों की वेदना और सर्वहारा की चेतनाओ को प्रखर बनाने वाले तथा संघर्षरत जनता में जोश भरने वाली कुछ अच्छी कविताएं लिखी है। वास्तव में आज की स्थिति में इस प्रकार की रचनाओं की बहुत जरूरत है। इनका विशेष साहित्यिक मूल्य तो होता ही है परंतु उनकी मुख्य सार्थकता उनके तात्कालिक प्रभाव में देखी जानी चाहिए। समकालीन कवि जैसे कि केदारनाथ सिंह, नागार्जुन, धूमिल, जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनामिका, अनुराधा सिंह आदि की काव्य रचना और भाषा में उपर्युक्त विशेषताएं मिलती है।

सीधी-सरल और सहज भाषा में आम जनता तक अपनी बात पहुंचा सकने के अलावा एक कवि को जन भाषा का इसीलिए भी सहारा लेना होता है कि इससे वह स्वयं भावात्मक धरातल पर जनता के बहुत करीब आ जाता है। मेहनतकश जनता की परिस्थितियों के साथ जुड़ने की प्रक्रिया का यह एक आवश्यक अंग है कि यह उनके सोचने-समझने और महसूस करने के माध्यम को भी अपना ले। कोई मनुष्य केवल गरीब लोगों की भाषा को सीख लेने मात्र से उनका अपना नहीं हो जाता। दरअसल सही प्रकार की भावात्मकता के लिए यह जरूरी है कि रचनाकार अपनी नियति को मेहनतकश जनता की नियति के साथ पूर्णतया जोड़ दें तथा अपने वास्तविक जीवन में उनकी समस्याओं और संघर्षों में भागीदार हो। इस प्रकार का निर्णय लेने के बाद मेहनतकश जनता की भाषा को अपनाना उनके साथ जुड़े होने का एक अच्छा चिन्ह होगा। इस प्रकार की स्थिति में कवि का जनवादी 'स्वर' अधिक प्रामाणिक लगेगा। इसलिए जब कभी कवि को मजदूरों, किसानों और स्त्री के जीवन का चित्रण करना हो तो उसे शिक्षित तबकों की भाषा

की परिधि से बाहर निकल कर,जहां कहीं आवश्यक है, क्षेत्रीय बोलियो के शब्दों का प्रयोग भी कर लेना चाहिए। विशेषकर उस समय जब किसान, मजदूर और स्त्री जीवन को भी प्रस्तुत किया जा रहा हो। ऐसे पात्रों के भावों और विचारों को उनकी अपनी भाषा में रखने से कविता में सजीवता आ जाती है। इसके साथ ही उनकी ओर कवि की आत्मिक भावना भी लक्षित हो जाती है। ऐसी कविता को जब एक पाठक पड़ता है तब वह दूर से एक झलक भर देखे हुए लोग न रहकर जाने पहचाने लगते हैं। यह सब विशेषताएं जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में खासकर स्त्री संबंधित कविताओं में मिलती है।

कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की भाषा जन भाषा है। उन्होंने अपने सामाजिक जीवन में किसान, मजदूर और स्त्री जीवन को बखूबी रूप से महसूस किया है। कवि ने उन्हें जांच परखकर अपनी कविता में भावात्मक और कथात्मक रूप में सत्यनिष्ठा के साथ प्रस्तुत किया है। साथ ही उन्होंने लोक जीवन में प्रयुक्त मुहावरों, लोकोक्तियों तथा लोककथाओं का सहारा लिया है। विश्व के सभी महान कवियों में यह विशेष योग्यता रही है कि अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपने क्षेत्र की जनभाषा की संभावनाओं को पहचानते थे और लोक मुहावरों से संचित अर्थ वैभव को आत्मसात करके अपनी अभिव्यक्ति को जानदार बना सकने की क्षमता रखते थे। सामाजिक जीवन के कुछ जाने पहचाने किंतु आधारभूत पहलुओं को थोड़े शब्दों में मूर्त रूप में व्यक्त करने का सामर्थ्य जन भाषा में विशेष रूप में होता है। क्योंकि एक जनवादी लेखक का मुख्य उद्‌देश्य सामाजिक जीवन के आधारभूत तत्वों को अच्छी तरह समझना होता है। इसीलिए उन मुहावरों और सूक्तियों से बहुत मदद मिलेगी। जिनमें पीढ़ियों के अनुभव के निचोड़ को स्मरणीय रूप दे दिया जाता है। जो बात अक्सर किताबी भाषा में घुमा-फिरा कर तथा बहुत सारे शब्दों में कमजोर ढंग से कही जाती है उसे कई बार जन भाषा के मुहावरों में कुछ नपे-तुले किंतु धारदार शब्दों में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से कहा जा सकता है। कविता के संसार में आंचलिक शब्दों के प्रयोग की अनिवार्यता स्पष्ट दिखाई

देनी चाहिए और उनके कारण पाठक का ध्यान कवि के कौशल की ओर नहीं परन्तु परिस्थिति की किसी मुख्य विशेषता की ओर जाना चाहिए। यही ही विशेषता रही है जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं की भी।

समकालीन कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव के स्त्री जीवन से संबंधित कई काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं जैसे कि अनभै-कथा, असुंदर-सुंदर, बिल्कुल तुम्हारी तरह, जितनी हंसी तुम्हारे होठों पर, स्त्रीयां कहीं भी बचा लेती है पुरुषों को, और बेटियां जैसे काव्य संग्रह में कवि ने स्त्री जीवन से संबंधित कविताएं लिखी है। जिसमें निम्नवर्गीय और मेहनतकश स्त्रियों की पीड़ा, शोषण को खुद महसूस कर वाणी प्रदान की है। जितेन्द्र श्रीवास्तव स्त्री को पुरुष की नजर से नहीं बल्कि स्त्री की नजर से देखते हैं। जितेन्द्र श्रीवास्तव अपने बचपन में अपनी मां, नानी और बहनों के साथ रहे है उन्होंने उनकी पीड़ा देखी, उनकी समस्या देखी तथा अपनी युवावस्था में अपने आसपास के माहौल में मेहनतकश स्त्रियां के दुख-दर्द को देखा और उन्होंने पाया कि स्त्रियां मूल रूप से बहुत इमानदार और मेहनतकश होती है और जीवटता रहती है उनमें। परिस्थिति कैसी भी हो जीवन में आर्थिक,सामाजिक लेकिन स्त्रियां कभी हार नहीं मानती। कवि स्त्री संबंधित कविताओं में स्त्रियों की पीड़ा को स्त्री की जगह खड़े होकर,स्त्री की वाणी में अपनी कविताओं में अभिव्यक्त करते हैं। स्त्री के एक पक्ष बेटी पक्ष पर भी जितेन्द्र श्रीवास्तव ने कविताओं की रचना की है। पिछले 23 साल में 23 कविताएं बेटियों पर लिखी है। हिंदी साहित्य में आज तक इतनी ज्यादा कविता किसी कवि ने बेटियों पर नहीं लिखी। जितेन्द्र श्रीवास्तव का बेटियों से संबंधित एक पूरा चयनित काव्य संग्रह का प्रकाशन हुआ है। जिसका नाम 'बेटीयां' है। जिसके संकलनकर्ता श्री कमलेश्वर वर्मा और उनकी पत्नी श्रीमती सुचिता वर्मा जी। इस चयनित काव्य संग्रह में कवि ने भावपूर्ण भाषा का उपयोग किया है। कवि ने अपने संग्रह में अपनी अभिव्यक्ति को भावपूर्ण भाषा में कथात्मकरूप से अभिव्यक्त किया है। जिसमें मानवीय और निश्छल

भाषा की ताजगी देखी जा सकती है। वात्सल्य रस से परिपूर्ण यह कविताएं पढ़ने के बाद हम बेटियों की दुनिया में खो जाते हैं।

काव्य शिल्प

'शिल्प' का शाब्दिक अर्थ किसी वस्तु को बनाना या गढ़ना होता है। जिस तरह एक चित्रकार रंग और द्रव्य जैसे माध्यमों से तथा एक संगीतकार स्वरों के माध्यम से, एक मूर्तिकार पत्थर के माध्यम से अपनी कला को आकार देता है। उसी प्रकार एक कवि अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के लिए कुछ काव्य अवयवों को तथा तत्वों के माध्यम से कविता को आकार प्रदान करता है। कवि की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकृत यह काव्य तत्व ही काव्य शिल्प है। काव्य शिल्प के तत्व कौन-कौन से हैं? यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है। काव्य रचना एक सूक्ष्म, संशिष्ट और जटिल प्रक्रिया है। इसीलिए काव्य के तत्व कौन-कौन से हैं उसका उत्तर सरल नहीं है। परंतु प्राचीन काल और आधुनिक काल में पाश्चात्य और भारतीय अनेक विद्वानों ने इस संबंध में कुछ दिशा-निर्देश दिए हैं। इन दिशा निर्देशों के अनुसार काव्य शिल्प के तत्वों पर विचार कर सकते हैं। सामान्य रूप से भाषा, रस, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार और छंद आदि को कविता के शिल्पगत तत्वों में गिना जाता है।

१.काव्य भाषा

काव्य भाषा के संदर्भ में पहले चर्चा हो चुकी है।

२.बिम्ब

बिम्ब काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। काव्य बिम्ब शब्द चित्र है जो स्मृति से प्रेरित होता है और जिसके निर्माण में कल्पना की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है और अपने भावात्मक स्वरूप के कारण बिम्ब पाठकों के मन में भावचित्र निर्माण करने की क्षमता रखते हैं। बिम्ब काव्य के बाह्य उपकरण मात्र न होकर बिम्ब

कवि की अनुभूति की अभिव्यक्ति की मानसिक सृष्टि है। जितेन्द्र श्रीवास्तव की स्त्री संबंधित कविताओं में स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति में बिम्ब का सजीव चित्रण हुआ है। जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे।

३.प्रतिक

प्रतिक काव्य का महत्वपूर्ण तत्त्व है। भारतीय और पश्चिमी दोनों परंपराएं इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। भारतीय वेद, उपनिषदों में बौद्ध, जैन और सूफी साहित्य, संत साहित्य में तथा आधुनिक काव्य में जैसे कि छायावाद के रहस्यवादी काव्य में प्रतीकों का महत्व रहा है। कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति अनेक प्रकार के प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। काव्य जगत में प्रतीक एक अनिवार्य अंग माना गया है। पश्चिमी देशों में तो 'प्रतिकवाद' के नाम से आंदोलन भी चल पड़ा था। वस्तुत: प्रतीक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। कवि अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए कवि जिन माध्यमों का जिन तत्वों का उपयोग करते हैं उसे प्रतिक कहते हैं। उदाहरण के रूप में कहे तो यदि 'हंस' का एक प्रतीक के रूप में उपयोग किया जाए तो हंस का अभिधा अर्थ विलुप्त हो जाएगा और उसका सूक्ष्म भावात्मक अर्थ ईश्वर या आत्मा उभर कर सामने आएगा। इसी प्रकार हिंदी साहित्य के कई काव्यों में 'दीप' साधना का प्रतीक है, 'अग्नि' ओज का प्रतीक है, 'भ्रमर' चंचलता का प्रतीक है। हिंदी साहित्य में भी आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में अनेक प्रतीकों का उपयोग हुआ है। आधुनिक कवियों ने तो कई नए प्रतीकों का उपयोग अपने काव्य में किया है। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की स्त्री जीवन से संबंधित कविताओं में तथा बेटियों से संबंधित कविताओं में अनेक प्रतीकों का उपयोग हुआ है। जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे।

४.अलंकार

'लोगों के मन तक कवि के विचारों का संचार करने वाली कविता को अलंकार की अपेक्षा नहीं होनी चाहिए।' पंत जी के इस वाक्य में कुछ सार हो सकता है परंतु आचार्य जयदेव का यह कथन-'काव्य को अलंकार रहित मानने वाला, अग्नि को उष्णता विहीन क्यों नहीं मान लेता।' इस वाक्य में पंत जी के कथन से अधिक सच्चाई नजर आती है। न केवल वामन, भामह इनके अतिरिक्त रीतिकालीन समय के अलंकारिक आचार्य भी काव्य में अलंकार के महत्व को प्रतिपादित करते हैं। आधुनिक युग में पश्चिमी समीक्षक और हिंदी के आधुनिक कवि, आलोचक भी अलंकार को काव्य में अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार कह सकते हैं कि काव्य शिल्प में अलंकार तत्व अत्याधिक महत्वपूर्ण है। अलंकार को हम काव्य का अनिवार्य उपादान मान सकते हैं। काव्य में अलंकारों की अभिव्यक्ति शब्द और अर्थ दोनों के द्वारा की जा सकती है। सामान्य रूप से अलंकारों को दो भागों में विभक्त किया जाता है।

१. <u>शब्दालंकार</u>

२. <u>अर्थालंकार</u>

काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही काव्य शिल्प के महत्वपूर्ण अंग है। परंतु जो महत्व अर्थालंकार का है वह शब्दालंकार को नहीं मिला। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव के स्त्री जीवन से संबंधित कविताओं में भी अलंकारों का अनायास ही उपयोग हुआ है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के द्वारा जितेन्द्र श्रीवास्तव ने स्त्री जीवन को बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया है। जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे।

५.छंद

'छंद' का शाब्दिक अर्थ है बांधना। कविता में छंद की अनिवार्यता को अनेक विद्वानों ने माना है। छंद युक्त काव्य विश्व साहित्य की लगभग सभी भाषाओं में रचा गया है। परंतु कविता का एक और भी रूप है जिसे हम मुक्त छंद कविता भी कहते हैं। जो इस तथ्य को मानता है कि काव्य छंद से मुक्त भी हो सकता है। छंद मुक्त कविता से तात्पर्य यह है कि छंद आदि के बंधनों से मुक्त कविता। अर्थात गति, लय, यति, संगीतात्मता से रहित शिल्प में भी कविता की रचना की जा सकती है। आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास को अगर हम देखते हैं तो हमें पता चलता है कि आधुनिक साहित्य की कविताओं में छंद का पतन हुआ है। आधुनिक हिंदी साहित्य में ज्यादातर कवियों ने छंद से मुक्त काव्य की रचना की है। इन कवियों ने अपनी कविता में अपने भावों की अभिव्यक्ति में छंद की लयबध्धता को स्थान नहीं दिया। जो भी मनोभावों उनके हृदय में प्राकृतिक रूप से आए उसे उन्होंने स्वाभाविक रूप से अपनी कविता में बिना छंद के खड़ी बोली में अभिव्यक्त किया है। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ने अपनी कविता संसार में छंद रहित कविताओं की रचना की है।

६.रस

काव्य को पढ़ने अथवा श्रव्य एवं दृश्य काव्य दोनों को नाटक के रूप में देखने से जो अलौकिक आनंद प्राप्त होता है, वह काव्य में रस कहलाता है। रस के जिन भाव से यह अनुभूति होती है वह स्थायी भाव कहलाता है। रस, छंद और अलंकार यह तीन काव्य के प्रमुख एवं आवश्यक अंग है। आचार्य विश्वनाथ ने रस की परिभाषा देते हुए कहा है कि-'रसात्मक वाक्यम काव्यम' अर्थात रस युक्त वाक्य ही काव्य कहलाता है। काव्य में रस उत्पत्ति का श्रेय भरत मुनि को जाता है। उन्होंने अपने नाट्यशास्त्र ग्रंथ में 8 रसों का वर्णन किया है जो इस प्रकार है-

श्रृंगार, हास्य, रौद्र, करुण, वीर, अद्भुत, वीभत्स तथा भयानक आदि। शांत रस का नाट्य में प्रयोग उन्होंने अनुचित माना है। परंतु उन्होंने इसे काव्य में रस के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार नवरस की संकल्पना निकलती है जिसमें नवरस है- श्रृंगार, हास्य, रौद्र, करुण, वीर, अद्भुत, वीभत्स, भयानक और शांत रस। परंतु वर्तमान में परवर्ती आचार्यों ने वात्सल्य और भक्ति को भी अलग रस माना है। भाव, विभाव और अनुभाव के योग से रस की निष्पत्ति होती है। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ने स्त्री-जीवन से संबंधित कविताओं में उनके जीवन से संबंधित पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि स्थितियों में तथा उनकी समस्याओं, पीड़ाओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं उनके विचारओं और भावओं आदि की अभिव्यक्ति श्रृंगार, वात्सल्य, शांत, करुण, वीर, रौद्र रस में की है। जिसकी चर्चा और अध्ययन हम आगे करेंगे।

जितेन्द्र श्रीवास्तव का जीवन बचपन से ही अपनी मां, नानी और बहनों के बीच बीता है। उनके जीवन को उन्होंने करीब से देखा है। स्त्री जीवन की कठिनाई, समस्याएं आदि को उन्होंने महसूस किया है। उनके जीवन में काव्य लिखने की चेतना का विकास यहीं से आरंभ होता है। स्त्रियों के बीच रहते हुए उन्होंने पाया कि स्त्रियां मूल रूप से बहुत ही ईमानदार एवं संघर्षरत होती है। वह कभी भी हार नहीं मानती। एक जीवंता रहती है उनमें। विवाह के बाद उनके जीवन में उनकी पत्नी आई। उनकी पत्नी अर्धांगिनी श्यामली जी। आज उनके सुखमय दाम्पत्य जीवन को 20 साल से अधिक हो चुका है। उनके जीवन की हर एक समस्या में चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो या फिर घर का निर्वाह करने के लिए व्यवसाय हेतु दूसरे शहर में जाना हो। हर समस्या में उनकी पत्नी उनके साथ बनी रहती है उनकी स्मृतियों में। पत्नी का प्यार और उनकी यादें कवि को किसी भी समस्या में हारने नहीं देती। इसी बात को अभिव्यक्त करती जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता है 'स्त्रीया कहीं भी बचा लेती है पुरुषों को' है। चिंतकों ने कहा है पेट की आग न होती तो शायद मनुष्य स्वाभिमान से जीता। यह पेट की आग और गृहस्ती चलाने

की समस्या ने कवि को खींच लाई है एक ऐसे शहर में जहां दिन बड़े विचित्र थे। राते बड़ी भयंकर थी। दृश्य अमावस में पहाड़ जैसे थे। अपने घर-परिवार पत्नी और बच्चों से दूर उस अनजान शहर में कवि को लगता था कहां आ गया हूं मैं। इस तरह पत्नी और बच्चों के बगैर किस तरह चलेगा। एक समय तो ऐसा भी आया कवि के जीवन में जिससे लगा कि हार जाऊंगा। परंतु -

"पर ऐसे ही पलों में

अक्सर स्मृतियों से झांकता था एक चेहरा

बहुत उदास पर मुस्कुराता हुआ

प्राणवायु की तरह"[1]

इस प्रकार किसी अपरिचित शहर में कवि को और कवि जैसे अन्य कई लोगों को असमय मृत्यु से बचाती रही। स्मृतियों में बसी उनकी स्त्रियां। इसीलिए कवि कहते हैं 'स्त्रियां कहीं भी बचा लेती है पुरुषों को'। अपनी पत्नी से दूर एक पति को जब भी अपनी पत्नी की याद आती है तब वह अपनी स्मृतियों में झांक कर अपनी पत्नी के चेहरे को देखता है याद करता है। जो उसमें जीवंता बनाए रखती है। उसे असमय मृत्यु से बचाए रखती है। इस कविता में कवि ने विरह के कारण विरहमयभाषा का उपयोग किया है। जो उनकी स्मृतियों में भरपूर मात्रा में है। पति-पत्नी के प्रेम और अलगाव के कारण इस कविता में श्रृंगार रस के साथ का विरह रस भी मौजूद है।

जितेन्द्र श्रीवास्तव की स्त्री के प्रति जो कविताएं है उन्हें पढ़ते हुए महसूस होता है कि उनकी भाषा कथात्मक एवं घटनात्मक है। जोकि आम जनजीवन के बहुत ही करीब है। उनकी कविताओं को पढ़ते हुए हम महसूस कर सकते हैं कि जैसे हम किसी घटना को पढ़ रहे हो या फिर कहानी को। 'रामदुलारी' कुछ इसी प्रकार की कविता है। अपने जीवन में घटित घटनाओं को उन्होंने कविता का जामा पहना

कर उसमें प्राण फूंक दिए हैं। उसे पढ़ने के बाद हमें महसूस करते हैं कि यह घटना तो हमारे आसपास ही कहीं घटित हुई है। 'रामदुलारी' घटनात्मक कविता है। जो इस प्रकार हैं। कवि को उनकी माता ने बताया कि 'रामदुलारी अब नहीं रही वह तो गई राम के पास। कुछ दुखी मन और बुझे स्वरों में कवि की माता ने उन्हें बताया। कवि अपलक ही निहारत रहे अपनी मां को थोड़ी देर वह महसूस कर सकते थे मां का दुख। रामदुलारी सहयोगी थी मां की 30 वर्ष से लंबी अवधि तक की। कवि के मां की कई दुखों की बटाईदार थी रामदुलारी। उनके गांव में मां के अलावा सभी लोग दाई कहते थे उन्हें। काम में नाम डूब गया था रामदुलारी का। कभी-कभी कवि की मां कवि को उनके साहस के किस्से भी सुनाती थी। सन 2010 में 83 वर्ष की आयु में दुनिया से विदा हुई थी रामदुलारी। दुनिया से विदा हुई रामदुलारी ने कोई 63 वर्ष पहले सन 1943 में अपने पियक्कड़ पति की पिटाई का विरोध करते हुए जमकर पीटा था उसे। गांव भर में दबे स्वर में लोग कहने लगे थे उन्हें मर्द मारन। परंतु हिम्मत नहीं थी गांव में किसी में भी सामने मुंह खोलने की।

"रामदुलारी ने वर्षों पहले
जो पाठ पढ़ाया था अपने पति को
उसका सुख भोग रही है
गांव की नई पीढ़ी की स्त्रियां
उनमें गहरी कृतज्ञता है रामदुलारी के लिए
वह उन्हें 'मर्द मारन' नहीं
'योद्धा' की तरह याद करती है।"[2]

जातियों में सुख तलाशते गांव में हमेशा जाति को लांघा था रामदुलारी ने। कोई भी भेद नहीं था उनमें बड़े-छोटे का। सबके लिए चुल्लू भर पानी था उनके पास। कवि की मां का मानना है की व्यर्थ की बातें हैं बड़ी जाति अपार धन। रामदुलारी न तो किसी बड़ी जाति में पैदा हुई थी और न ही किसी धन्ना सेठ के घर। पर उनके आचरण ने सिखाया हमेशा हमें निष्कलुष रहने का सलीका। बाभनों, कायथो, ठाकुरों, बनियों, भूमिहारों में डींगे चाहे जितनी बड़ी हो अपनी श्रेष्ठता की। परंतु कोई स्त्री-पुरुष नहीं इनमें। जो आसपास भी ठहर सके रामदुलारी के। पुरुष प्रतिरोध का विरोध करती तथा वीर रस से भरपूर यह कविता स्त्री के वीरांगना और रणचंडी रूप को रेखांकित करती है। जब पुरुष अत्याचार बढ़ जाता है तब एक साधारण स्त्री रणचंडी का रूप धारण कर लेती है। यही तो चाहते है जितेन्द्र श्रीवास्तव, स्त्रियां डरे नहीं लड़े अपने स्वाभिमान के लिए और यही तो रामदुलारी ने किया। इसलिए रामदुलारी को एक योद्धा की उपमा देना उचित है। भारतीय ग्रामीण समाज की रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, जातिवाद आदि का विरोध करती है यह कविता। स्त्री के शौर्य को अभिव्यक्त करती है कविता वीर रस से ओतप्रोत है। स्त्री जीवन के इतिहास को अगर हम देखते हैं तो हम पाते हैं कि स्त्रियों को पृथ्वी पर जीवन की शुरुआत के दिनों से ही उन्हें दबाया गया। उन्हें कुचला गया और जीवन में भी यही होता है जो दबकर रहता है उन्हें दुनिया दबाती है और जो विरोध करता है उनसे दुनिया डरती है। जो डरते नहीं वही स्वाभिमान, स्वतंत्रता के साथ अपना जीवन जीते हैं। अपने हक के लिए जीना हर एक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।

हमारे संविधान में देश के प्रत्यक्ष मनुष्य को चाहे वह पुरुष हो या फिर स्त्री, सभी को समान अधिकार दिया है। लेकिन आज कहीं न कहीं स्त्रियों के लिए यह लोकतंत्र क्या है? यह बराबरी क्या है? आदि प्रश्न उनके मन में बने हुए हैं। उन्हें आज भी भारतीय लोकतंत्र में चाहे वह सांसद हो या विधानसभा, पुरुष के बराबरी का स्थान नहीं मिला है। तो यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है। इस बात की

अभिव्यक्ति करती जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता 'पत्नी पूछती है कुछ वैसा ही प्रश्न जो कभी पूछा था मां ने पिता से' में व्यक्त किया है। कभी किसी समय कवि की माता ने उनके पिता से -

"ए जी, ये लोकतंत्र क्या होता है?

पूछा था मां ने पिताजी से

कई वर्ष पहले जब मैं किशोर था।"[3]

इस प्रश्न के उत्तर में उनके पिताजी उत्तर नहीं दे पाए क्योंकि लोकतंत्र प्रेम की तरह दिखता है खुला खुलासा परंतु एक रहस्य है। समय-समय पर हमारा लोकतंत्र परिवर्तनशील हो जाता है अपनी सुविधाओं की व्याख्या रच लेता है। जब वो चाहे कभी भाषा से, कभी शक्ति से, कभी भक्ति से, कभी छल, कभी प्रेम से। लोकतंत्र को समझना स्त्री के लिए दुविधा ही दुविधा है। उत्तर की सुविधा भी एक दुविधा है। जो शब्द में है। अभिव्यक्ति में पहुंच नहीं पाता। जो अभिव्यक्ति में पहुंचता है तो जीवन में उत्तर नहीं पता। लोकतंत्र क्या है इसका उत्तर कवि के पिता तो नहीं दे पाए और आज जब उनकी पत्नी यह प्रश्न पूछती है कि-

"ए जी, ये बराबरी क्या होती है?"[4]

कवि अपने पिता की तरह इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ है। लोकतंत्र के प्रश्न की तरह है यह बराबरी क्या होती है। यह प्रश्न पूछना स्त्रियों का हक है लेकिन आज इसका उत्तर न तो संविधान के पास है न कवि के पिता के पास और न ही कवि के पास है। भारतीय संविधान के अनुसार स्त्रियों को जो हक मिलना चाहिए था हमारे लोकतंत्र में बराबरी का वह नहीं मिल पाया इसका उत्तर न तो आपके पास है न ही मेरे पास न ही कवि के पास। अपने अधिकारों के लिए प्रश्न उठाती स्त्री की यह स्वतंत्रता,समानता के प्रश्न का उत्तर हमारे पास मौजूद नहीं है।

आप सभी लोग जानते ही होंगे ऐश्वर्या राय, प्रियंका चोपड़ा, कैटरीना कैफ, एंजेलिना जोली, सुष्मिता सेन आदि अभिनेत्री को। लेकिन क्या आप जानते हैं संजना तिवारी को? कवि की व्यक्तिनिष्ठ कविता 'संजना तिवारी' आज के समय में बहुत महत्वपूर्ण है। संजना तिवारी ने कभी अभिनय नहीं किया एकता कपूर की किसी धारावाहिक में, वह किसी न्यूज़ चैनल की संवाददाता भी नहीं। कवि के अनुसार उन्होंने कभी जुलूस भी नहीं निकाला। चमक-दमक,लाभ-हानि, प्रेम और घृणा के गणित में पड़े इस संसार को उन्होंने ठेंगा दिखाया है। संजना तिवारी फुटपाथ पर बेचती है दुनिया का महान साहित्य और उन पत्रिकाओं में श्रृंगार, जिम और मुनाफे पर कोई लेख नहीं होता। वैसे वे चाहती तो खोल सकती थी प्रसाधन का कोई छोटा-सा स्टोर। या फिर ढूंढ सकती हैं अपने लिए कोई नौकरी किसी मल्टीनेशनल कंपनी में या फिर प्रकाशन संस्था में टाइपिस्ट की नोकरी। फिर भी उन्होंने महत्वपूर्ण ज्ञानवर्धक पुस्तकों एवं पत्रिकाओं को बेचना उचित समझा। संजना तिवारी महज एक स्त्री का नाम नहीं है। किताबे बेचना उनका खानदानी व्यवसाय नहीं है। वह किसी भी साहित्यिक से अधिक जानती है। साहित्यिक पत्रिकाओं के बारे में। अपने नए ग्राहकों को सुझाव भी देती है कि उन्हें क्या जरूर पढ़ना चाहिए। संजना तिवारी महज एक नाम नहीं। तेजी से लुप्त हो रही है प्रवृत्ति है। जिसे बचाना बहुत जरूरी है। आज की युवा पीढ़ी में आधुनिकरण और टेक्नोलॉजी के कारण लिखने और पढ़ने की प्रवृत्ति कम होती जा रही है। अच्छी पुस्तकें और साहित्य को पढ़कर ही व्यक्ति अपना, समाज और देश का विकास कर सकता करता है। इस लिखने-पढ़ने की प्रवृत्ति को संजना तिवारी ने बड़े ही इमानदारी और शिद्दत से निभाया है। इसीलिए कवि का मानना है संजना तिवारी महज एक नाम नहीं ज्ञान का प्रतीक है ज्ञान का केंद्र है-

"इसलिए अगली बार जब भी जाइएगा मंडी हाउस

श्री राम सेंटर के सामने

पेड़ के नीचे धरी पर रखी सैकड़ों किताबों पत्रिकाओं में से
कम से कम एक जरूर ले जाइएगा अपने साथ
और यकीन रखिए आपका यह उपहार
किसी और पर फर्क डाले न डालें
दाल में नमक जितना ही सही
जरूर डालेगा अगली पीढ़ी पर।"[5]

कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव 'जिस शहर का सपना है उसकी आंखों में' कविता के माध्यम से एक ऐसे समाज का सपना दिखाते हैं। जहां लड़कियां अपनी शर्तों पर जीती हो। जहां कोई राजा न हो, कोई प्रजा न हो। सब एक दूसरे से प्रेम करते हो। कवि की आंखों में जिस शहर का सपना है-

"उस शहर में कोई किसी का राजा नहीं
कोई किसी की प्रजा नहीं
कोई किसी के अधिकार में नहीं रहता
कोई किसी पर अत्याचार नहीं करता"[6]

इस कविता में कवि ने ऐसे शहर की कल्पना की है जिसमें स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व के गुण मौजूद है। कविता पढ़ते हुए मन में बिम्ब-सा बनता है जो न जाने कब वास्तविक रूप में देखने को मिलेगा। कविता शांत रस से भरपूर है। भाषा सहज और सरल है।

कवि की दृष्टि से मध्यमवर्गीय कामकाज करती स्त्रियों की समस्याएं भी ओझल नहीं होने पाई है।'यह स्त्री, जिसे देख रहे हैं आप' शीर्षक कविता में कवि 'चढ़ती दुपहरी की, चिलचिलाती धूप में बोझा ढोती हुयी स्त्री की परेशानियों का वर्णन

करते हैं। यह कविता 'धारचूला' की स्त्रियों की समस्या पर होते हुए भी संपूर्ण मेहनतकश स्त्री-जाति का प्रतिनिधित्व करती है। ये मेहनतकश स्त्रियां सुबह अंधेरे में ही घर से निकल पड़ती है, रोटी की जुगाड़ में। यह स्त्रियां अपनों के सुख के लिए, अपनी शक्ति की सीमा तक, अपनी पीठ पर बोझा ढोती है। इन्होंने कभी लखनऊ या कभी दिल्ली नहीं देखी। शायद इसीलिए इनके अंदर संवेदना बची हुई है। तभी तो-

"मुजफ्फरनगर की एक मनहूस दोपहर

शूल की तरह चुकी है इसे।"[7]

काम के बोझ के चलते वे स्त्रियां तीस की उम्र में सैंतालीस की दिखती है। कवि लिखते हैं कि-

"तीस की उम्र में सैंतालीस की चिताओं का घर है।"[8]

जबकि समाज में स्त्रियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो सैंतालीस की उम्र में तीस की दिखती है। शायद और कुछ कहने की जरूरत नहीं, कवि बहुत दूर तक संकेत कर देते हैं। प्रस्तुत कविता में कवि ने भारतीय मध्यम वर्ग की स्त्रियों की समस्याएं तथा परिवार के प्रति उनकी जिम्मेदारी और उनके दुख को सहज भाषा में अभिव्यक्त किया है। यह धारचूला की मेहनतकश स्त्रियां भारतीय मध्यमवर्गीय मेहनतकश स्त्रियों के प्रतिक के रूप में प्रतिनिधित्व करती हुई दिखती है।

भारतीय संस्कृति में सबसे अधिक पवित्र रिश्ता माना गया है तो वह है भाई-बहन का रिश्ता। लोक में प्रचलित गोधन पर्व को भी कवि ने अपने कविता 'वे उड़ती है गौरैयों की तरह' कविता में जगा दी है। इस पर्व के माध्यम से वे हमारी लोक संस्कृति और परंपराओं को रेखांकित करते हैं। गाय के गोबर से गोधन बनाकर बहने अपने भाइयों की लंबी उम्र और सुखी जीवन की प्रार्थना करती है-

“वे गाती है गीत

अपने भाइयों के लिए

और प्रार्थना करती है उनके

लंबे और सुखी जीवन की।”[9]

तीसरे पहर तक निर्जला रखकर वे व्रत की आंच में तपकर भी गौरैयों की तरह उड़ती रहती हैं। पर आज महानगर के जीवन में यह संस्कृति लुप्त हो चुकी है। गोधन बनाना और लोकगीत गाना आज लज्जा की बात लगती है। यह महज एक पर्व नहीं था। यह भाई-बहन के अटूट प्रेम और विश्वास का प्रतीक था। यह हमारी एक सांस्कृतिक पहचान थी कभी, जो आज होती जा रही लुप्त। गौरैया इस कविता में प्रतीक है बहन की। भाई-बहन के पवित्र रिश्ते पर लिखी गई कविता माधुर्य गुण से भरपूर है। जो पढ़ते ही मन को मोह लेती है।

भारतीय संस्कृति में आदिकाल में अनेक प्रकार के विवाह प्रचलित थे। परंतु वर्तमान में दो तरह के विवाह प्रचलित है। पहला माता- पिता की आज्ञा के अनुसार विवाह करना। दूसरा है अपने पसंदीदा जीवनसाथी के साथ प्रेम विवाह करना। माता-पिता की आज्ञा के अनुसार विवाह करने पर परिवार और समाज का थोड़ा बहुत साथ मिलता है परंतु अपनी मर्जी के अनुसार विवाह करने पर एक लड़की को परिवार और समाज से तिरस्कृत किया जाता है। आज आधुनिक युग में भी लड़कियां अपने मन के अनुसार अपने पसंदीदा व्यक्ति के साथ विवाह नहीं कर सकती। वह अपने मन के अनुसार अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकती। अगर वह परिवार और समाज के खिलाफ जाकर प्रेम विवाह करती है तो उसे कुलचनी समझा जाता है। विद्रोही समझा जाता है। कुछ इस प्रकार के ही भाव व्यक्त करती हैं। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता ‘आभा चतुर्वेदी’ है। कवि को 4 वर्ष बाद अचानक दिखाई दी आभा चतुर्वेदी ‘कहो ना प्यार है’ का पोस्टर निहारती

हुई। पुरुषवादी समाज में खुलेआम 'कहो ना प्यार है' फिल्म का पोस्ट निहारना यह भी उसका विद्रोह है।

"चार वर्ष पहले वसंत के दिनों में

आभा चतुर्वेदी से आभा द्विवेदी हुई

वह आभा शर्मा होना चाहती थी।"[10]

इस प्रकार उसका विवाह अपने मन के अनुसार न होकर किसी अन्य जगह पर हो गया। अपने माता पिता की इच्छा के अनुसार उसने विवश होकर अपनी आंखों के आंसुओं से अपने सपने और काजल दोनों को धो दिया। पुरुषवादी समाज में स्त्रियों की इच्छाओं का कोई मोल नहीं। परंतु आज आभा न तो अपने पति के साथ है न ही परिवार के साथ। वह अकेले ही अपने मन के अनुसार अपना स्वतंत्र जीवन अकेली जी रही है। कवि को आज जब वह मिली तो बड़ी खुश नजर आए। इस कविता में स्त्री की स्वतंत्रत भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। आभा चतुर्वेदी प्रतीक है स्वतंत्र जीवन जीने वाली स्त्रियों का। समाज की रूढ़िग्रस्त मान्यताओं को तोड़ने वाली विद्रोही स्त्री का। मनुष्य जीवन एक ही बार मिला है। हर मनुष्य को यह हक है कि वह अपने अनुसार अपना जीवन जिए। इस बात को सिद्ध करती हुई आभा हमें नजर आती है।

कवि इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे समय की "लड़कियां कविता बना नहीं चाहती।"[11] वह स्वतंत्रता जा रही है घर में भी और कविता में भी। यह अच्छी बात है कि कवि के घर और कविता दोनों स्थानों पर लड़कियां मुक्त है। लड़कियां सजावट का सामान नहीं है न ही कोई वस्तु है जिससे कविता सजाई जाए। लड़कियां किसी भी प्रकार का बोझ भी नहीं है। जिसे उतार कर किसी नदी के घाट लगा दिया जाए। लड़कियों को अपनी मर्जी से जीने का पूरा हक है। लड़कियों को अपने जीवन का फैसला खुद लेना ही चाहिए। वह सदियों से पहरेवाले घरों से मुक्त हो सुकून का जीवन जीना चाहती है। लड़कियां चाहती है कि-

“देर से घर लौटने पर

पिता या पति की आंखों में

संदेह नहीं बस प्रेम देखें।”[12]

वह सिर्फ कहावतें और मुहावरे में नहीं बल्कि जीवन में देखना चाहती है ‘बिन घरनी घर भूत का डेरा’। आज स्त्री विमर्श के केंद्र में सबसे बड़ा प्रश्न स्त्री मुक्ति का ही है। हर तरफ और हर तरह से मुक्ति। जितेन्द्र श्रीवास्तव लड़कियों के इस स्वच्छंद विचारों का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं।

इस संसार में एक पुरुष का घर एक ही होता है अपने पिता का घर। अगर वह पुरुष अपनी कमाई से अपनी योग्यता से कोई दूसरा घर ले ले तो अलग बात है। परंतु स्त्रियों के मामले में ऐसा नहीं होता। स्त्रियों को समय-समय पर अपना घर बदलना पड़ता है। घर के प्रति अपना लगाव छोड़ना पड़ता है। स्त्री का जब जन्म होता है तब वह एक बेटी होती है उसके पिता का घर उसका अपना घर होता है। अपने पिता के घर में ही पहली बार चलना सीखना, संस्कार सीखना, पढ़ाई-लिखाई, शिक्षा आदि ग्रहण करना, अपने भाई-बहनों के साथ तथा दोस्तों के साथ खेलना, मस्ती करना। अपने मां-बाप और परिवार के सभी सदस्यों के साथ प्यार से रहना उनका प्यार पाना। परिवार में बेटियां पहले भी महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने परिवार को संभाले में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। माता-पिता,भाई-बहन, दादा-दादी आदि की हंसी-खुशी और सेवा में उनकी भूमिका पहले से ही महत्वपूर्ण रही है। लड़की अपने पिता के घर को ही अपना घर समझने लगती है परंतु विवाह योग्य होने पर उनको अपने बाबुल का घर छोड़ना पड़ता है। पिता के घर से जुड़ी हुई अपनी सभी भावनाओं को, अपने लगाओ को छोड़ना पड़ता है। विवाह होने के बाद उनके मन में एक ही बात रहती है अब एक और घर। और यह घर होता है उनके पति का जहां उन्हें पूरा जीवन व्यतीत करना होता है। नए सिरे से शुरुआत करनी पड़ती है जीवन की, अनजाने लोगों के साथ और यह करना उनके लिए

आसान नहीं होता। 'अब एक और घर' कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की एक प्रसिद्ध कविताओं में से एक है। जिसमें यही भाव निहित है। अपने पिता के घर को छोड़कर अपने पति के घर में जीवन की एक नई शुरुआत करनी पड़ती है।अपने पति के घर में सास-ससुर की सेवा करना, देवर और ननंद के साथ मित्रवत व्यवहार करना, पति की सेवा करना, हर सुख-दुख में उसका साथ निभाना। पति और परिवार की हर एक मुसीबत में उनके साथ खड़े रहना। चाहे वह समस्या पारिवारिक हो या सामाजिक हो। साथ ही बच्चों का पालन-पोषण करना। एक अनजाने घर में। लेकिन यह अनजाना घर अब उसे अपना-सा लगता है। पति के घर से ही अपनी बेटीयों और बेटों का विवाह होता है। और आखिर में -

"इसी घर से विदा हुए पति अंतिम यात्रा के लिए

इसी घर में बेटे ने पाई जीवन की इच्छित ऊंचाई

इसी घर में बसा पोते का घर

इसी में जन्मे खेले पोते-परपोतियां

अब यह घर छूट रहा है।"[13]

एक स्त्री के लिए संसार में अपना कोई घर नहीं होता। बचपन में पिता का कर उसका अपना घर होता है। विवाह के बाद पति का घर उसका अपना घर होता है। पति के बाद अपने बेटे का घर उसका अपना घर होता है। पिता, पति, बेटों के घरों में ही एक स्त्री का जीवन व्यतीत होता है। बार-बार उन्हें अपना घर बदलना पड़ता है। और हर एक घर से उनका एक अपना लगाव होता है उनकी भावनाओं का जुड़ाव, यादें, स्मृतियां होती है। उन भावनाओं और लगावों को छोड़कर स्त्री को फिर से एक नई शुरुआत करनी पड़ती है एक और नए घर से और अंत में उनके मुख से निकल ही पड़ता है-

“अब एक और घर

हे ईश्वर”[14]

स्त्री के लिए अपने पिता का घर, पति का, घर बेटे का घर प्रतीक होता है अपनी यादों का, अपनी भावनाओं का, अपनी स्मृतियों का जिसे समय आने पर छोड़ना पड़ता है। एक पुरुष के मुकाबले एक स्त्री का जीवन संघर्ष आसान नहीं होता इस दुनिया में। प्रस्तुत कविता में शांत रस और करुण रस उभर कर आए हैं हमारे सामने। साथी स्त्री के लिए घर प्रतीक होता है अपनी स्मृतियों का। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की काव्य भाषा में एक प्रकार का अपनापन है एक प्रकार की सहजता, सरलता है जिसे पढ़ते ही हमें समझ में आ जाती है। उनकी भाषा में एक प्रकार की भावुकता और कथात्मकता है जिसे पढ़ते ही मन में तरह-तरह के बिम्ब बनते रहें।

जितेन्द्र श्रीवास्तव की ‘इन दिनों हाल-चाल’ काव्य संग्रह की ‘घास गढ़ती औरतें’ एक अद्भुत कविता है।‘घास गढ़ती औरतें’ धरती माता के साथ-साथ अपने परिवार के जीवन को भी चिकना देती है। इन स्त्रियों की मेहनत पशुओं के नाद और परिवार दोनों में हरापन भर देती हैं। यह स्त्रियां हर जगह हर तरफ हरापन ही देखना चाहती है। घर से जीवन और जीवन से नाद तक। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव बताते हैं कि इन औरतों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि-“घास गढ़ती औरतें/बच्चों की पढ़ाई लिखाई और/सेहत के लिए/खूब लड़ती है पतियों से/जायज बातों पर खुश/और नाजायज बातों पर/साड़ी खुंटियाकर लड़ने को तैयार/घास गढ़ती औरतें/कभी नहीं सिखाती है जवान बेटियों को/कि पति परमेश्वर होता है!”[15] सही तो है जायज बातों पर खुश और नाजायज बात पर लड़ने को तैयार, आखिर यही तो चाहते हैं कवि स्त्रियों से। वे सहे नही लड़े साड़ी खुंटियाकर लड़े अपने अधिकारों के लिए। घास गढ़ती औरतों के साथ-साथ कवि की भी यही इच्छा है कि मां अपनी बेटियों को कभी यह न सिखाए कि पति परमेश्वर होता है। वास्तविकता

तो यह है कि यह पुरुषवादी समाज की एक चाल है। स्त्री जाति का शोषण करने के लिए।

इतना ही नहीं कवि आगे कहते हैं कि ये औरतें "हर शाम को सेंकती है आग/अलाव को घेरकर/ताकि टहककर रेंग सके/रगों में जमा हुआ खून।"[16] यह स्त्रियां अपने खून को जमने नहीं देती। आखिर में कवि लिखते हैं कि-"घास गढ़ती औरतें/सोने से पहले सुबह के लिए/बोरसी की राख में छुपाकर/रख देती है थोड़ी सी आग।"[17] कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव भी यही चाहते हैं कि जिस तरह बोरसी के भीतर आग छिपी रहती है। उसी तरह स्त्रियां भी अपने दिल में आग को बचाकर रखें। बोरसी की आग अंदर से जितनी प्रचंड होती है। उतनी ऊपरी स्तर पर दिखती नहीं। बोरसी की आग प्रतीक है अपने हक के लिए लड़ रही स्त्री के विद्रोह का। इस कविता में ध्यान देने वाली एक और बात है। कवि किसी उच्चवर्ग या बड़ी कंपनी में काम करने वाली स्त्री को नहीं परंतु एक घास गढ़ने वाली औरत को आदर्श के रूप में उपस्थित करते हैं। अर्थात कवि की दृष्टि सामान्य स्त्री जीवन पर टिकी हुई है। इस कविता के अनुरूप ही लोकभाषा और शब्दों का चुनाव किया गया है जैसे कि बोरसी, जायज, नाजायज, सिवान, खाची, बटोरना, गठरी, हरापन। इस कविता में ओजपूर्ण भाषा और वीर रस की अभिव्यक्ति बखूबी हुई है।

पुरुषों के जीवन में हर एक अवस्था में स्त्री का कोई न कोई पक्ष उसका साथ देने के लिए रहता है। जैसे की बाल्यावस्था में मां, दादी और नानी द्वारा बच्चों की देखभाल करना। मां,दादी और नानी द्वारा उन्हें अपनी संस्कृति के मूल्य सीखना, बोलना-चलना और अपनी भाषा सीखना आदि। बाल्यावस्था में ही पुरुष के जीवन में उसकी बहन का पक्ष भी बहुत ही महत्वपूर्ण है। एक बहन अपने भाई के जीवन में एक शुभचिंतक की रूप में होती है उसका अच्छे से दिशा- निर्देश करती है। विवाह के बाद एक स्त्री अपने पति के जीवन में आई तरह-तरह की मुश्किले सामाजिक,आर्थिक पारिवारिक आदि समस्याओं में उसके साथ खड़ी रहती है उसका साथ कभी नहीं छोड़ती। इस तरह हम कह सकते हैं कि एक पुरुष के

जीवन में स्त्री का बहुत महत्व है विभिन्न पक्षों में। कवि के जीवन में भी उनकी नानी का बहुत महत्व है। अपनी नानी को समर्पित 'नानी' कविता पढ़ते हुए हमें अपने बचपन की याद आ जाती है। मां, बहन और पत्नी की तरह एक पुरुष के जीवन में दादी और नानी का महत्व भी उनसे कम नहीं। बचपन में दादी या नानी द्वारा बच्चों को अपने जीवन के अनुभव द्वारा वह शिक्षित करती है। अपनी संस्कृति और जीवन मूल्य सिखाती है। तरह-तरह की कहानियां सुना कर बच्चों को शिक्षित भी करती है। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के साथ उनके खाने-पीने का भी ध्यान रखती है। सच में माता-पिता की तरह दादी और नानी भी ईश्वर की तरफ से दिया गया हुआ बच्चों को एक बहुत बड़ा तोहफा है। जिससे किसी भी व्यक्ति का सुव्यवस्थित व्यक्तित्व का विकास होता है-"सूरजमुखी के फूल की तरह/जीवन जिया था नानी ने/हम लोगों की रोटी/और दाल-भात के लिए/खेत में तैयार फसल हो गई थी नानी/रजनीगंधा की तरह सुगंधित/हम लोगों के प्रात: की चाय/और रात का दूध थी नानी/हम लोगों का पंख थी नानी।"[18]

प्रस्तुत कविता में नानी का बच्चों के प्रति वात्सल्य भाव व्यक्त हुआ है। कवि ने उपमा, रूपक जैसे अलंकारों का सहज उपयोग इस कविता में किया है। जो कविता के भाव सौंदर्य में अभिवृद्धि करता है।

'बिल्कुल तुम्हारी तरह' कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव का सन 2011 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित काव्य संग्रह है। यह एक प्रेम कविताओं का काव्य संग्रह है जो उन्होंने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शामली श्रीवास्तव के लिए लिखा है। जितेन्द्र श्रीवास्तव की प्रेम कविताओं में शब्द अर्थ में पिघल जाता है और अर्थ शब्द का रूपाकार ग्रहण कर लेता है। उनकी कविता जिस ताकत से अपनी जगह बनाने में सफल है, उसका उत्स उसकी प्रेम संवेदना में ही है। दैहिक और निजी संदर्भों के स्तर पर पक कर यह 'प्रेम' उनकी कविता में एक नई व्याप्ति प्राप्त करता है। प्रेम की व्याप्ति जितेन्द्र की कविताओं में न केवल स्त्री की आंतरिक दुनिया की वेदनाओं तक फैली हुई है बल्कि इसके मूल में वह सारा समय समाज दाखिल

होता है। जो किसी न किसी रूप में कवि के निजी अनुभव का हिस्सा रह चुका है। यहां कवि खुलकर स्वीकार करता है कि वह प्रेम ही है जिसने उसे और उसकी संवेदना को अधिक मानवीय, भावाकुल और निडर बनाया है। जितेन्द्र श्रीवास्तव की प्रेम कविताएं दाम्पत्य से जल, वायु और धूप ग्रहण करती है। यह लालसा से नहीं, सहचर्य से जन्मा प्रेम है। इसमें साधारण का औदात्य है। छोटी-छोटी स्मृतियों के जरिए बुनी गई इन कविताओं की गहराई पाठकों से अलक्षित नहीं रह पाएगी। ये जीवन के प्रति गहरी आस्था से उपजी कविताएं हैं। इन कविताओं में अभिव्यक्त प्रेम दुनिया से कटकर सार्थकता नहीं पाना चाहता। वह इसी जीवन का, उसके सुख- दुख का हिस्सा है। एक ऐसे समय में जब विद्रोह के प्रचलित शब्द बेमान होने लगे, संघर्ष के सारे रूपों को आततायी सत्ता की संस्कृति सन्देहास्पद बनाने लगे। तब प्रेम कविताओं की जरूरत बढ़ जाती है। कवियों के दायित्व भी बढ़ जाते हैं। यह सुखद है कि जितेन्द्र का कवि मन सरल निश्चल जीवन की खोज में हर उसे जगह जाना चाहता है जहां प्रेम एक आदत की तरह हो। वही जीवन का सार हो। उनका प्रेम दैहिक दायरे से निकलकर अपने विस्तार में पूरी कायनात को समेट लेने को उत्सुक है। न केवल उत्सुक बल्कि कल्पना की असंभव हदों तक जाकर उस स्वप्न संसार को संभव कर लेना चाहता है। निश्चय ही, 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' काव्य संग्रह जीवन को नया अर्थ देने वाली कविताएं हैं।

इस संसार में मनुष्य की दो ही जातियां हैं एक पुरुष और दूसरी स्त्री। आदिकाल से इन दोनों में काम के लिए बटवारा हो चुका है। पुरुष घर चलाने के लिए बाहर का काम करेगा और स्त्री घर-परिवार और बच्चों को संभालेगी। परंतु पुरुष अपना काम करते-करते थक जाता है वह ठीक से अपना काम भी नहीं कर पाता। इसके विपरीत स्त्री घर-परिवार को संभालने के साथ-साथ बाहर का काम भी करती है। कवि के जीवन में भी ऐसे बहुत से क्षण आए। तब उन्हें उनकी पत्नी की याद आई-

"मैं तो थक जाता हूं अक्सर

ठीक से नहीं कर पता अपने हिस्से का भी काम

और तुम हो

जो सब कुछ कर लेती हो हंसती हुई चुपचाप।"[19]

सचमुच स्त्री के लिए घर और बाहर दोनों का काम करना आसान नहीं। पुरुष मात्र बाहर का काम करके ही थक जाता है। लेकिन आज की स्त्री सब कुछ कर सकती है असंभव को भी संभव बना देती है। परन्तु घर और बाहर का काम करती स्त्री अब मौन रहने लगी है। वे नहीं बताती अपनी इच्छाएं और नहीं जाहिर करती अपनी आकांक्षाएं। वह बस चुपचाप अपने कर्तव्य का पालन करती है। लेकिन कवि को अपनी पत्नी का चुप रहना पसंद नहीं है वह चाहते हैं कि-

"फिर भी एक इच्छा है मन में

कि अबकी जब मैं घर आऊ

तुम अपनी कहो

अपने जैसों की कहो

और मैं सुनूं उसी तरह

जैसे सुनती हो तुम

वैसे सच-सच बतलाना

क्या तुम्हें लगता है मैं सब कुछ सुन पाऊंगा

बिल्कुल तुम्हारी तरह।"[20]

इस दुनिया में सबसे कठिन काम स्त्री को समझना हैं। उसकी भावनाओं को, उसके विचारों को, उसकी इच्छाओं को समझना। यह कार्य करना बड़ा ही कठिन है। क्योंकि स्त्री जितने धैर्य से अपने पति को सुनती है उतना ही धैर्य से एक

पुरुष अपनी पत्नी को नहीं सुनता। परंतु कवि अपनी पत्नी को बिल्कुल उनकी तरह ही यानी स्त्री की तरह सुनना चाहते है। स्त्री को ध्यान से सुना और उसे बोलने का मौका देना यानी उसकी स्वतंत्रता, अस्मिता और अस्तित्व को स्वीकार करना है। एक पुरुष के लिए स्त्री की तरह सोचना स्त्री की जगह खड़े होकर सोचना आसान नहीं है फिर भी कवि अपनी पत्नी से इतना प्रेम करते हैं कि उसके सुख-दुख को समझने के लिए बिल्कुल उनकी तरह ही उसे सुनना चाहते हैं। कवि आगे कहते हैं कि-

"मैं जानता हूं यह अपराध है

पर क्या करूं

कहां से लाऊं

अपने भीतर एक स्त्री की आत्मा

वह भी एक ऐसे समय में

जब बच्चियों मारी जा रही है कोख में ही"[21]

स्त्री शोषण का सबसे विकृत रूप है कन्या भ्रूण हत्या का। 21 सी सदी में भी यह एक विकराल समस्या बनी हुई है हमारे लिए। आधुनिक युग में भी यह समस्या मानवता पर प्रश्न उठाती है। प्रस्तुत कविता 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' में स्त्री के लिए आदरणीय और मानवीय भाषा का उपयोग किया गया है। रूपक अलंकार और श्रृंगार रस की भी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक समय की कई समस्याओं में से एक स्त्री भ्रूण हत्या की ओर भी कवि ने हमारा ध्यान दृष्टिगत किया है।

जितेन्द्र श्रीवास्तव प्रेम के अनन्य गायक हैं। उनकी व्यापक ख्याति का एक बड़ा कारण उनकी प्रेम कविताएं भी है। उनकी कविताओं का रसायन प्रेम, परिवार,

समाज और राजनीति के गहरे संश्लेष से तैयार हुआ है। 'बिल्कुल तुम्हारी तरह' के 11 वर्ष बाद उनकी प्रेम कविताओं का दूसरा संग्रह 'जितनी हंसी तुम्हारे होठों पर' प्रकाशित हो गया है। इस काव्य संग्रह में 1990 से लेकर 2021 तक की कविताएं संकलित है। प्रेम कविताओं की भीषण अकाल वेला में इस प्राणवान संग्रह का प्रकाशित होना रेगिस्तान में सरोवर मिलने कैसा है। इस संग्रह की कविताएं उम्र की परिधि लांघते हुए।हर उम्र के पाठकों को अपने गहन आकर्षण में बांध लेती है। भाव-भाषा और अभिव्यक्ति का ऐसा अपूर्व संयम दुर्लभ है। पूर्व में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इस संग्रह की कई कविताएं प्रेमियों के लिए औषधि का कार्य कर चुकी है। बहुत से पाठक उन कविताओं को मन के बारजे पर सहेज कर रखे हुए हैं। जितेन्द्र श्रीवास्तव की प्रेम कविताएं साहचर्य के नए सौंदर्य शास्त्र की एक सर्वथा नई पृथ्वी का संधान करती है। इन कविताओं को पढ़ने के बाद पाठक अपने को किसी कल्पना लोक में विलीन नहीं करता बल्कि वह जीवन के प्रति अधिक सकारात्मक हो उठता है। यह कविताएं रागात्मकता के जीवद्रव्य से भरी हुई है।

इस काव्य संग्रह में संग्रहित एक कविता 'जितनी हंसी तुम्हारे होठों पर' एक पुरुष के जीवन में स्त्री का साथ और उसकी हंसी के महत्व को अंकित करती है। स्त्री की तरह ही एक पुरुष का जीवन आसान नहीं होता। दाम्पत्य जीवन में एक-दूसरे के सहयोग से ही जीवन सरल बनता है। साथ-साथ चलने से ही जीवन आसान बनता है। जीवन में सुख-दुख चलता ही रहता है यही जीवन का नियम है। ऐसे समय में ही एक दूसरे का साथ देना बहुत जरूरी है। कवि के जीवन में भी हताश-निराश करने वाले दुख के दिन और बिमारी के साथ जूझने के दिन आए। तब दुख से निराश हुई अपनी पत्नी को समझते हैं। कवि के पास अपने किसान पिता की विरासत है। उन्होंने अपने पिता की आंखों में सांझ नहीं देखी। अपनी मां को कभी उन्होंने हारते नहीं देखा। उन दुर्दिनों में भी नहीं जब कैंसरग्रस्त पिता मृत्यु से जूझ रहे थे। कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव अपने माता-पिता के जीवन-संघर्ष

और सकारात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से अपनी पत्नी को समझते हैं कि जीवन में सकारात्मक सोच रखना साथ ही ऐसे दुखमय समय में एक- दूसरे का साथ देना जीवन को सहज- सरल बना देता है। कवि अपनी बेटियों के माध्यम से पत्नी से कहते हैं कि-

"तुम गौर से देखो अपनी बेटियों को

इतने सुंदर इतने मोहक नहीं सृष्टि में दूसरे फूल

सोचो तो जरा

ये महज बेटियां नहीं

प्राणशक्तियां है हमारी

मैंने महसूस किया है

इनकी हंसी को

जो असरदार बना देती है दवाओं को भी"[22]

कवि अपनी बेटियों के माध्यम से अपनी पत्नी को समझते हैं कि जीवन में कभी हताश नहीं होना चाहिए। कवि अपनी पत्नी को जीवन के प्रति सकारात्मक सोच रखने के लिए कहते हैं। इसके लिए अपनी बेटियों का उदाहरण देते हुए अपनी बेटियों को फूल की उपमा देते है और अपने दाम्पत्य जीवन की प्राणशक्तियां तक कह देते है। सचमुच जीवन के विकट समय में पति-पत्नी का एक-दूसरे का साथ होना, साथ ही बेटियों की हंसी जीवन को खुशियों से भर देती है। बेटियों की हंसी जो असरदार बना देती है दवाओं को भी। बेटियों की हंसी जीवन में प्राणशक्तियों की तरह होती है। जो हताशा और निराशा जैसे भाव को जीवन से दूर कर जीवन को सकारात्मक और आनंदमय बनाती है।

कवि अस्वस्थ होते हुए भी अपने माता-पिता और बेटीओ के माध्यम से अपनी पत्नी को हौसला रखने को कहते हैं। कवि का मानना है कि वह जीत जाएंगे हर रोग और शौक से परंतु इसके लिए उन्हें पत्नी का साथ चाहिए और मुस्कान चाहिए। कवि अपनी पत्नी को हंसने की सलाह देते हुए कहते हैं कि-

"हंसो जरा जोर से

तुमको मालूम नहीं

सचमुच

तुम कितनी अच्छी लगती हो

जब दिल से हंसती हो

सच मानो

जितनी हंसी तुम्हारे होठों पर

उतनी खुशी हमारे जीवन में"[23]

दाम्पत्य जीवन में पत्नी का साथ, उसकी हंसी और बेटियों की हंसी एक पुरुष के जीवन को खुशियों से और सकारात्मक सोच से भर देती है। प्रस्तुत कविता की भाषा सहज और सरल तथा भावपूर्ण है। श्रृंगार और शांत रस की अभिव्यक्ति भी बहुत ही बढ़िया तरीके से हुई है। माधुरी भाव से भरपूर यह कविता में उपमा, रूपक जैसे अलंकारों का सहज ही प्रयोग हुआ है।

जितेन्द्र श्रीवास्तव ने पिछले 23 साल में 23 कविताएं बेटियों पर लिखी है। वह कविताएं अलग-अलग काव्य संग्रह में संग्रहित है। आलोचक कमलेश्वर वर्मा और सुचिता वर्मा ने उनकी बेटी संबंधित कविताओं का चयन कर एक चयनित काव्य संग्रह 'बेटियां' प्रकाशित करवाया है। जो की हिंदी साहित्य में बेटियों पर पहला काव्य संग्रह है। जिनमे बेटियों को लेकर भावपूर्ण और वात्सल्यमय भाषा की

अभिव्यक्ति हुई है। अनेक प्रतिको द्वारा बेटियों के स्वच्छंद भाव को अभिव्यक्त किया गया है। बेटियां काव्य संग्रह में एक कविता है 'मैं एक चिड़िया हूं पापा' जिसमें बेटी एक चिड़िया के प्रतीक के रूप में आती है और अपने स्वच्छंद इच्छाओं की अभिव्यक्ति करती है। जिस प्रकार एक चिड़िया होती है वह अपने जीवन में स्वतंत्रता होती है उसके जीवन में किसी भी प्रकार का बंधन नहीं होता। धरती उसके पास होती है आसमान उसकी आस होती है। अपने मन के अनुसार उड़ने के लिए उसके पास पंख होते हैं। बिना रोक-टोक वह उड़ती है। अगर थक जाए तो जिस डाल पर चाहती है वहां बैठ जाती है। अपने मन के गीत गाती है। उसका घोंसला, उसका घर अपनी पसंद का होता है। इसलिए वह खुश रहती है। इसी तरह बेटियां भी अपने पिता से खुद को एक चिड़िया के रूप में देखने को कहती है। वह भी अपने मन के अनुसार अपना जीवन स्वच्छंद रूप से जीना चाहती है। वह चाहती है कि उसके पास भी अपनी धरती और अपना आसमान हो। उसके पंख उसके पास हो जिससे वह बिना किसी रोक-टोक के उड़ सके। अपनी इच्छा अनुसार अपने मन के गीत- गा सके। वह चाहती है कि उसका घर अपना घर हो अपनी पसंद का हो। तभी तो वह खुश रहेगी -

"सोचो तो पापा

मैं तुम्हारी बिटिया

इक चिड़िया हूं

अपने मन की!

सोचो तो पापा सोचो न!"[24]

प्रस्तुत कविता में जितेन्द्र श्रीवास्तव ने बेटियों के स्वतंत्र विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। बेटी को चिड़िया के प्रतीक के रूप में स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत किया

है। काव्य की भाषा सहज और सरल है। शांत एवं वात्सल्य रस का निरूपण सहज ही हुआ है।

बेटियों के जीवन पर आधारित जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता 'जीवन के बसंत की धूप' एक प्रसिद्ध कविता है। वसंत की धूप सभी को पसंद होती है। वसंत की धुप जीवन में गरमाहट और सकारात्मकता भर देती है। इसी तरह दाम्पत्य जीवन में बेटियों के आगमन से जीवन खुशियों से भर जाता है। जीवन खुशहाल हो जाता है। स्त्री के प्रति मानवीय भाव सशक्त हो जाते हैं। बेटियों के प्रति वात्सल्य भाव अनायासी अभिव्यक्त होते हैं। बेटियों के आगमन से जीवन में पति-पत्नी के बीच सहचार्य प्रेम ओर भी बढ़ जाता है। जीवन के संघर्षों से लड़ने की नई शक्ति मिलती है। बेटियां वरदान होती है अमरत्व का। घर- बाहर हर कहीं भी जब हंसती है बेटियां। बढ़ जाती है उम्र पिता की। परिवार में बेटियों के आगमन से घर-परिवार खुशियों से भर जाता है। बेटियां ही तो है जीवन की वसंत की धूप। तभी तो कवि कहते हैं-

"आओ मेरी बेटियों आओ!

कि धूप हो तुम लोग

हम दोनों के जीवन के वसंत की।"[25]

प्रस्तुत कविता में रूपक अलंकार का सहज ही प्रयोग हुआ है। माधुरी भाव से भरपूर यह कविता पढ़ते ही वात्सल्य भाव में मन डूब जाता हैं।

जितेन्द्र की बेटियों से संबंधित काव्य-संग्रह में जीवन के वसंत की धूप, मैं एक चिड़िया हूं पापा, ओ मेरी बेटीयों याद रखना जैसी 23 कविताएं परिलक्षित होती है। यह कविताएं मानवता को पल्लवित करने वाली और स्त्री-विमर्श को नया आयाम देने वाली रचनाएं हैं। कवि ने बेटियों लेकर स्वयंम स्वीकार किया है कि-

"तुम लोगों के आने के बाद

शायद मनुष्य होने लगा हूं

तुम लोगों की हंसी में हंसने लगा हूं"[26]

आज के इस भूमंडलीकृत समाज में बेटियों की दुर्दशा से कवि अपरिचित नहीं है। बिना मानसिकता बदले स्थिति परिवर्तित नहीं हो सकती। पिता की चिड़ियों को डरना नहीं, हारना भी नहीं, लड़ना है समय से-

"ओ मेरी बेटियों याद रखना

यदि जीवन में दुख का आलाप दीर्घ होने लगे

तब भी परछाइयों के पीछे पीछे मत भागना

डरना नहीं किसी आईने से!"[27]

महर्षि कण्व की तरह कवि बेटियों को शिक्षा देते है ना डरना, ना हार, लड़ना समय से। प्रस्तुत कविता में बेटियों के भविष्य के प्रति पिता की चिंता और वात्सल्य रस की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

'सोनचिरई' कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव की बहुत चर्चित कविता है। इस कविता की रचना 1996 में हुई, परंतु पहली बार यह कविता 'पहल-59' में प्रकाशित हुई थी। यह कविता भोजपुरी जनपद की एक प्रसिद्ध लोक कथा को आधार बनाकर लिखी गई है। जिसे हम लोकगीत भी कह सकते हैं। यह लोकगीत पुत्र जन्म के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। इस गीत को लोक में 'सोहर' कहा जाता है। 'सोनचिरई' की शुरुआत लोक कथा की तरह होती है। कविता की पहली पंक्ति है-

"बहुत पुरानी कथा है

एक भरे पूरे घर में

एक लड़की थी सोनचिरई।"[28]

बचपन में दादी और नानी द्वारा सुनाई गई कथाओं की शुरुआत भी कुछ इस तरह से होती थी-'बहुत पहले की कथा है एक गांव में एक राजा रहता था।' कहने का अर्थ यह है कि जितेन्द्र श्रीवास्तव के हाथों में आकर भी लोक कथा का मूल स्वर और मूल भाव नहीं बदलता। जितेन्द्र श्रीवास्तव की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि महानगर में रहने के बाद भी उनसे उनकी संस्कृति और मूल्य नहीं विसरते। वास्तव में यही वह जगह है, जहां से खड़े होकर जितेन्द्र श्रीवास्तव चीजों को देखते हैं। कभी-कभी यह समझना बहुत कठिन हो जाता है कि लोक कवि के भीतर गहरे रूप में मौजूद है या कवि लोक के भीतर। जितेन्द्र को पढ़ना अपने लोक से गुजरा और मिलना है। जितेन्द्र स्त्री की वेदना को स्त्री की भाषा में ही अभिव्यक्त करते हैं। वह स्त्री को स्त्री की नजर से स्त्री की जगह पर खड़े होकर देखते हैं।

भारतीय समाज और साहित्य में न तो स्त्री का दुख नया है और न ही उसकी अभिव्यक्ति। आज से कई सौ वर्ष पहले लोकगीतों के माध्यम से लोक साहित्यकारों ने स्त्री की पीड़ा और उसके बांझपन के दर्द को अभिव्यक्त किया गया है। बस जरूरत है कि ऐसी लोक कथा और लोकगीतों की खोज करने की।

एक स्त्री सारे दर्द और पीड़ा को बर्दाश्त कर सकती है सिवाय बांझपन के। घर, परिवार और लोगों की चुभती बातें और उनका निष्ठुर और निर्दय व्यवहार उसे अंदर से तोड़ देता है। घर, परिवार के निष्ठुर व्यवहार और स्त्री के अपार दुख को लोकगीत में बहुत ही बारीकी से दिखाया गया है। उसे दर्द को ठीक-ठीक अनुभूत करने के लिए यहां उस सोहर को देना अप्रासंगिक न होगा, जिस आधार बनाकर 'सोनचिरई' कविता लिखी गई है। 'सोहर' थोड़ा बड़ा है लेकिन उस दर्द से गुजर ने के लिए यह जरूरी भी है-

"सासु मोरी कहेली बंझिनिया, ननद ब्रजवासिनी रे

ए ललना जिनिकर बारी में बिआही, उहो घर से निकाले ले हो।"[29]

इस 'सोहर' में और जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता 'सोनचिरई' में स्त्री की व्यथा फूट पड़ी है। पति के घर से निकालने के बाद वह जंगल-जंगल भटकती है। वह इस दुख से उबरने के लिए जीना नहीं मरना चाहती है। परंतु विडम्बना यह है कि उसे मौत भी नसीब नहीं होती। बाघिन, नागिन और धरती उसे खाने, डसने और अपनानी से अस्वीकार कर देती है।'सोनचिरई' का जन्म और विवाह एक अच्छे परिवार में हुआ था। परंतु विपत्ति में उसे न तो ससुरालवालों ने अपनाया और न ही नैहर वालो ने। यहां तक की उसकी अपनी मां ने भी उसकी 'चिरौरी' को अस्वीकार कर देती है। मां कहती है -

"और सुनो बुरा न मानना बेटी

जो तुम्हारी परछाई पड़ेगी

तो मेरी बहू बांझ हो जाएगी"[30]

इस पंक्ति से यह बात भी ध्वनि होती है कि स्त्री का अपना कोई घर, कोई ठिकाना नहीं होता, जहां वह विपत्ति में सुकून से रह सके। उसे नैहर या ससुराल के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ता है और जब वे भी अपनाने से इनकार कर दे तब? तब तो उसके पास एक ही रास्ता बचता है वह है मौत का। इस कठोर और निष्ठुर समाज में एक बांझ स्त्री के लिए थोड़ी-सी संवेदना और जगह नहीं है।

'सोनचिरई' कविता धरती से निवेदन तक लोकगीत पर आधारित है। उसके बाद का अंश कवि की अपनी सोच है। परंतु कहीं से भी यह प्रसंग अतिरिक्त नहीं लगता। रस में कहीं भी बाधा उपस्थित नहीं होती। बल्कि लगता है कि इस अधूरी रचना को या यूं कहे एक अधूरी स्त्री को जितेन्द्र श्रीवास्तव पूर्ण बनाते हैं। 'सोहर' सुनने के बाद किसी के भी मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उसके बाद क्या हुआ होगा? वह कहां गई? आदि तमाम तरह की जिज्ञासाएं हो सकती है और होनी भी चाहिए। एक संवेदनशील मनुष्य के मन में ऐसे प्रश्न उठना स्वाभाविक है। सोहर सुनने के बाद शायद कवि के मन में भी यह प्रश्न उठा

होगा। और उसके उत्तर की खोज में वह राह-राह भटका भी होगा। अंत में वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि- "स्त्रियां कभी बांझ नहीं होती/वे रचती है। वे रचती है तभी हम आप होते हैं/तभी दुनिया होती है/रचना का साहस पुरुष में नहीं होता/वे होती है तभी पुरुष/पुरुष होते हैं"[31]

'सोनचिरई' बांझ नहीं थी। इस बात को साबित करने के लिए जितेन्द्र श्रीवास्तव लोकगीत को एक नया मोड़ देते हैं। कवि सिर्फ कविता लिखने के लिए कविता नहीं लिखते। परंतु वे कविता के साथ-साथ समाज में भी परिवर्तन देखना चाहते हैं। इस कविता में बांझ स्त्री की सच्ची वेदना और सच्चा प्रेम व्यक्त हुआ है।

स्त्री की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए आज जिस भाषा का प्रयोग किया जा रहा है उसे कितनी अलग स्वस्थ और साफ सुथरी भाषा है इस कविता की है। सच्चाई तो यह है कि स्वाभाविक और सरल भाषा में ही ऊंची और सच्ची अभिव्यक्ति हो सकती है। कृत्रिम भाषा में कृत्रिम भाव ही व्यक्त होगे। हम देखते हैं जितेन्द्र श्रीवास्तव बहुत ही सूझ-बूझ से शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे एक-एक शब्द के प्रति सचेत और सतर्क है। इनकी सतर्कता से हिंदी कविता समृद्ध हुई है। कविता प्रतीकात्मक है। एक लड़की या स्त्री का प्रतिक 'सोनचिरई' है।'सोनचिरई' के माध्यम से स्त्री का दुख इस कविता में अभिव्यक्त हुआ है। करुण रस के साथ-साथ शांत रस की भी अभिव्यक्ति बखूबी हुई है। प्रस्तुत कविता की भाषा भावपूर्ण और कथाआत्मक है। जिसे पढ़ते ही अंतर्मन में एक बांझ स्त्री की दुखद कहानी चलती है।

स्त्रीजीवन से संबंधित एक कविता 'शब्दार्थ' में जितेन्द्र श्रीवास्तव वर्तमान के बाजारवादी संस्कृत में स्त्रियों की स्थिति का मूल्यांकन व्यंगपूर्ण भाषा और अभिधा शब्द शक्ति में करते हैं। वर्तमान समय में कोई भी चीज खरीदी और बेची जा सकती है प्रेम, नफरत, ईमानदारी,विश्वास, भावनाएं और स्त्री भी। कविता में उत्प्रेक्षा अलंकार की भी झलक मिलती है-

“प्यार माने स्त्री

स्त्री माने देह

यही है दर्शन

यही है दृष्टि

बाजार की।”[32]

जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविता ‘सिंदूर’ भी प्रतीकात्मक कविता है। बचपन में कवि के मन में भी यह प्रश्न उठा था। ‘सिंदूर’ क्यों लगाती है स्त्रियां विवाह के बाद? विवाह तो पुरुष का भी होता है। परंतु वह रह जाता है जैसा का तैसा। हमारी भारतीय संस्कृति में विवाह के बाद पुरुष के लिए कोई प्रतीक निर्धारित नहीं है। लेकिन स्त्री के लिए है सिंदूर। ज्यादातर लोगों की मानसिकता है कि पुरुष को अलग से कुछ धारण करने की जरूरत नहीं होती। पुरुष प्रतीक है स्वयं और प्रतीक नहीं धारण करते प्रतीक। दूसरी ओर स्त्री के जीवन में विवाह के बाद सिंदूर धारण करना अनिवार्य है क्योंकि वह प्रतीक है उसके सुहागन होने का। कवि की मां का कहना है-

“सिंदूर से दिप-दिपाता है

सुहागन का चेहरा

विवाह के बाद

सिंदूर न हो मांग में

तो राख हो जाती है आभा।”[33]

कवि को अपने आस-पास के लोग और अपनी मां से स्त्री का सिंदूर लगाने का सटीक कारण पता नहीं चलता। विवाह के बाद अपनी पत्नी को सिंदूर न लगाने

को कहने पर वह नाराज हो जाती है और ऐसी अपशकुन वाली बातें न करने को कहती है। तब कवि को पता चलता है कि-

“मित्रों, पहले तो नहीं था पर
अब विश्वास हो गया है मुझे
कि सिंदूर भय है स्त्री का।”[34]

भारतीय संस्कृति में ‘सिंदूर’ स्त्री के लिए सौभाग्य की निशानी होता है। लेकिन एक पुरुष के लिए विवाह के बाद ऐसा कोई प्रतीक नहीं होता। पुरुष स्वतंत्र होता है वह स्वयं प्रतीक माना जाता है। विवाह से पहले और विवाह के बाद स्त्री को सोलह सोमवार और करवा चौथ जैसे व्रत रखने पड़ते हैं। जबकि एक पुरुष को एक अच्छी पत्नी पाने के लिए या पत्नी की लंबी उम्र के लिए ऐसा कोई व्रत नहीं रखना पड़ता। एक स्त्री जब विधवा होती तब उसके माथे पर सिंदूर नहीं होता। तब उसका जीवन नर्क के समान हो जाता है। समाज में उसे जितना मान-सम्मान मिलना चाहिए उतना नहीं मिल पाता। किसी शुभ प्रसंग में जैसे शादी-विवाह, गोद-भराई की रस्म, नए मकान के वास्तु पूजन में नहीं बुलाया जाता। क्योंकि उस स्त्री को अशुभ माना जाता है। घर, परिवार और समाज का निष्ठुर व्यवहार उसे जीने नहीं देता। इसीलिए हर एक स्त्री सुहागन रहना चाहती है सिंदूर का महत्व समझती है। इसलिए कवि को लगता है कि सिंदूर भय है स्त्री का।

आज की स्त्री और लड़कियां अपनी इच्छा अनुसार अपना स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। समकालीन कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव इस बात को अच्छे से जानते हैं। उनकी एक कविता ‘सपनों में परी की तरह’ में इस बात का जिक्र हुआ है। ‘सपनों में परी की तरह’ कविता में लड़कियां अपनी इच्छा अनुसार गोरखपुर, लखनऊ, अयोध्या और न जाने कहां-कहां घूमती है। वे अपनी मर्जी से फिल्में देखी है,

सामान खरीदता है और सरयू नदी में नहाती भी है। वे इस बात की चिंता नहीं करती कि लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं? क्या कहेगे ?

“वे तीन लड़कियां है

तीन अलग-अलग दिशाओं से आयी हुई

वे रहती है साथ-साथ

एक ही घर में

जैसे तीन अलग-अलग फुल हो

किसी एक ही टहनी पर

उनको इस बात की भनक भी नहीं

कि अपनी तर्ज पर जी रही है वे सब

परियों की तरह आती है

इस कस्बे की लड़कियों के सपने में!”[35]

प्रस्तुत कविता में उत्प्रेक्षा अलंकार का शानदार प्रयोग हुआ है। आज स्त्री विमर्श के केंद्र में सबसे बड़ा प्रश्न मुक्ति का ही है, हर तरफ और हर तरह से मुक्ति। जितेन्द्र श्रीवास्तव लड़कियों के इन विचारों का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं।

समकालीन हिंदी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर कवि जितेन्द्र की काव्य भाषा विविध आयामों से युक्त है। जटिल सामाजिक संरचना और सभ्यता के विकास से उपजी अनेक विकृतियों ने समाज, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, राजनीति, धर्म और अर्थ आदि को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। जोकि भाषा मनुष्य और समाज के जीवन का अनिवार्य पहलू है अतः भाषा भी इस जटिल संरचना के प्रभाव से अछूती नहीं रही। भाषा और सौंदर्य के बदलाव पर जितेन्द्र श्रीवास्तव

टिप्पणी करते हैं कि "भाषा साहित्य की भी बदली। नवोन्मेष और यथार्थ की पारदर्शिता के नाम पर वहां भी जो परोसा जा रहा है, वह मृदुता के पोखर(अब समुद्र कहना अतार्किक होगा) के निरंतर सूखने जाने को ही रेखांकित करता है। खुलेपन ने जिस मात्रा में भाषिक सौंदर्य को बढ़ाया है उसी मात्रा में भाषिक सौंदर्य को स्खलित भी किया है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि मर्यादा अनिवार्य रूप से सामंती मूल्य नहीं है। प्रगति और प्रगतिशीलता को भी मर्यादित नहीं होना चाहिए।"[36] अनेक चुनौतियों और बदलावो के बावजूद काव्य के रूप में भावाभिव्यक्ति अनादि काल से निरंतर गतिशील है। लेकिन यह भावाभिव्यक्ति सहज और स्वाभाविक हो, ऐसा कम कवियों के यहां देखने को मिलता है। जितेन्द्र उन बिरले कवियों में से एक है जिनकी काव्य भाषा सहजता, संवेदना और स्वाभाविकता से युक्त है। सर्वेश सिंह के शब्दों में "जितेन्द्र की कविता में भाषिक संवेदनशीलता अखंड रूप में वर्तमान है। संवेदनशीलता का यह भाषिक व्यवहार उनके यहां विचार या अनुभूति मात्र नहीं अपितु मानस की एक समग्र क्रिया है। यह समग्र क्रिया अपनी परंपरा को भी अपने में ऐसे समाये हुए हैं जैसे कि वर्तमान हो। एक अर्थ में यह वह संवेदनात्मक विकास है जिसकी जड़ें बहुत गहरी है।"[37]

आज काव्य रचना के समक्ष अनेक चुनौतियां मौजूद है। कवि-कवयित्रियां वैचारिक स्तर पर या तो पूर्वग्रहों से युक्त है या अपने काव्य को नितांत नयेपन से युक्त करने के चक्कर में उसे कृत्रिम बना रहे हैं। यदि भारतीय समाज की बात करें तो यह बहु आयामी है। ऐसे में भारतीय संदर्भ में किसी एक पक्ष पर केंद्रित नहीं हुआ जा सकता, बहुआयामिता की रक्षा हेतु होना भी नहीं चाहिए। जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं की प्रासंगिकता का एक कारण यह भी है कि विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र और बहुभाषी एवं बहु सांस्कृतिक राष्ट्र के लगभग सभी पहलुओं पर अपनी कविताएं रची है। कवि ने तमाम चुनौतियों के बावजूद भाषा की भूमिका को सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में ही देखने का प्रयास किया है-"भाषा का काम क्या है? सामाजिकता का विस्तार करना या फिर उसकी परिधि को संकुचित करना?

जाहिर है, सामाजिकता का विस्तार ही भाषा का उद्देश्य होना चाहिए। अब कोई पूछ सकता है कि भाषा के संदर्भ में सामाजिकता का आशय क्या है? इसका सीधा सरल उत्तर है, दूसरे के सम्मान का ध्यान रखते हुए भाषा का आचरण करना ही सामाजिकता और सही अर्थ में लोकतंत्रिकता है।"[38]

जितेन्द्र ने जटिल सामाजिक संरचना और उसके अंतर्गत जूझते मानवीय समाज की समस्याओं को सूक्ष्मता से, स्वाभाविकता से चित्रित किया है। यही कारण है की भाषा और भावाभिव्यक्ति की समस्या इस कवि के सामने तो कतई नहीं है। कमलेश वर्मा के अनुसार "जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताएं सूक्तियों को रचती है और इनमें लाक्षणिकता का, व्यंजन का उपयोग अधिक दिखाई पड़ता है।"[39] यह गहन अध्ययन-अध्यापन, अवलोकन तथा मनोविज्ञान की समझ के कारण है। संप्रेषण की समस्या भी आज की हिंदी कविता के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। कविता की सहज निर्मित संप्रेषण की समस्या को दूर करती है, पाठक कवि के संवेदना से जुड़ता है। अरुण होता जितेन्द्र श्रीवास्तव के काव्य में अंतर्निहित सहजता और स्वाभाविकता के संदर्भ में लिखते हैं कि "जितेन्द्र के लिए कविता हृदय के भावो का सहज उच्छलन है, उनकी कविताओं से गुजर कर यह निस्संदेह कहां जा सकता है। बड़ी स्वाभाविकता और और सहजता के साथ जितेन्द्र अपने भावों को अभिव्यक्त करते चले जाते हैं। पाठकों से संवाद करते हुए। पाठक चकित रह जाता है कि कवि के यहां सब कुछ इतना सहज और स्वाभाविक कैसे बन जाता है। सहज तो है पर आसान नहीं, व्यंजनाधर्मी है। काव्य-विवेक से संपृक्त है। कलाबोध से युक्त है।"[40] किसी कवि के निजी जीवन में विद्यमान सहजता, व्यावहारिकता काव्यभाषा को ओर भी सहज बनाती है। यह विशेषता कवि जितेन्द्र के संदर्भ में अक्षरश: लागू होती है और यहां युगानुकूल भाषा का उपयोग है। काव्य कला के टूल से कहीं अधिक बल भावों के संप्रेषण पर है। अभिधात्मकता भी विशेष रूप से उनके काव्य में दृष्टिगत होती है। अमिताभ राय के अनुसार "इनकी भाषा में लोच भी है, प्रवाह भी है, पढ़े-लिखे की गंध भी है।

परंतु उनकी भाषा की सबसे बड़ी ताकत है-इनकी अभिधात्मकता। प्राथमिक रूप से इनकी भाषा लक्षणा की भाषा नहीं है। इसके बावजूद उसमें व्यंजन की उड़ान मिल जाती है।"[41]

जितेन्द्र की कविताओं को पढ़ने के बाद स्पष्ट होता है कि इस कवि की भाषा में सक्रियता और सजीवता का बोध एक बड़ी विशेषता के तौर पर मौजूद है। जीवन संसार और उससे जुड़े सरोकारों की सूक्ष्म समझ काव्य को इस विशेषता से युक्त करती है। सरोकारों पर सूक्ष्म दृष्टि रखने के साथ-साथ निरंतर हो रहे बदलावो की सचेत मानस से पड़ताल जितेन्द्र के यहां बखूबी देखी जा सकती है। भाव प्रस्तुति, सक्रियता, भाषा सौंदर्य का अनुठापन यहां दृष्टिगत होता है-

"पलकों पर ठहरी थी दो बूंदें

अधरों पर चिलबिल हंसी

एक बूंद ठोढ़ी पर कापती- सी

अब ढुलकी कि तब ढुलकी।"[42]

संसार से जुड़ा चाहे कोई भी विषय हो, कवि जितेन्द्र सक्रियता और सजीवता का दामन नहीं छोड़ते। इसी परिप्रेक्ष्य में मानव समाज और प्रकृति का सजीव चित्रण कवि ने किया है। इस चित्रण में एक ओर भाषा की विशेषता रेखांकित की जा सकती है। वह है मितव्ययिता। संसार के किसी भी विषय को बहुत कम शब्दों में स्पष्ट रूप से सम्मुख रख देने की कला कवि के यहां बहुलता से मिलती है। मनोज कुमार झा इस विशेषता पर लिखते हैं कि-"मितकथन कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव का काव्य स्वभाव है। यह उनके यहां दो स्तरों पर सक्रिय हैं। कलाबोध के स्तर पर स्फृतिमुक्त कविता रचने का उद्‍यमता तो यह है ही। मगर एक और महत्वपूर्ण स्तर पर इसका एक ज्ञानमीमांसामूलक आशय भी है-खुद कम बोलने

से दूसरे के लिए बोलने का अवसर खुलता है,'अन्य' का स्तर दबता नहीं है, अन्य उसे छवि का अध्यारोहण नहीं होता जो कवि की आत्मरतिग्रस्ता से बनती है और अन्य के प्रति भाषिक व्यवहार के स्तर पर संवेदनापूर्वक सुनने और विनयशीलतापूर्वक कहने का यह हुनर हासिल होता है'[43] सजीवता, मानवीकरण, प्रतीकात्मकता, बिंबधर्मिता, उन्मुक्त जीवन दर्शन आदि की दृष्टि से यहां कुछ काव्य पंक्तियां दृष्टिगत होती है-

"तुम आयी

सवेरे सवेरे!

चली हवा

झुका पीपल

सिहरी डाली हरसिंगार की

मन खिला बसंत का

उड़ी एक मैना

निकल पिंजरे से।"[44]

समकालीन हिंदी कविता में संवाद कायम करने वाली भाषा का अभाव भी एक समस्या है। जटिल विषयों को जटिल भाषा में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा है तो उसे महज कला प्रदर्शन करने जैसा होगा। यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है कि भावो की अभिव्यक्ति के लिए कवि किसी भी स्तर पर संघर्षरत नहीं बल्कि भाषा उनके व्यक्तित्व की आभा पाकर मानवीय सरोकारों को सहजता से व्यक्त करती जान पड़ती है। कवि द्वारा रचित समूचे काव्य के अंतर्गत जटिल विषय की आसान शब्दावली में प्रस्तुति बहुलता से देखी जा सकती है-

"कितना अजब है

अब हंसी के मायने

खुशी से अलग कुछ और है।"[45]

भाषा का अपना सहज सौंदर्य होता है वह अधिक प्रभावित होता है। कृत्रिम सौंदर्य कुछ समय के लिए चमत्कृत कर सकता है। कृत्रिम सौंदर्य अधिक आकर्षक भले ही हो किन्तु वह दूरगामी नहीं होता। वह बाद के समय में आलोचना का शिकार होता है। कभी-कभी खारिज कर दिया जाता है। कृत्रिम सौंदर्य के विपरीत कवि जितेन्द्र सहज सौंदर्य के पक्षधर है। इसी कारण सौंदर्य की सहजता, भाव, भाषा, रूप, शिल्प आदि के स्तर पर मौजूद है। जितेन्द्र गुप्ता इनके काव्य में अंतर्निहित सहज सौंदर्य पर लिखते हैं कि "जितेन्द्र श्रीवास्तव का कवि कर्म रूप से जितना उद्रेलित करता है, शिल्पगत रूप में उतना ही अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय भी है। यहां पुन: दोहराना पढ़ रहा है कि कवि ने सामान्य भाषा का प्रयोग करके हमारे समाज के यथार्थ को सशक्त ढंग से व्यक्त किया है। यह सामान्य भाषा कविता की सामान्यता का पर्याय नहीं।बल्कि कई बार उसकी जटिलता के स्रोत में तब्दील हो जाती है, क्योंकि जीवन के इतने सामान्य अनुभव के साथ कवि की विचारधारा व वैचारिक स्थिति को निर्धारित कर पाना बहुत कठिन हो जाता है। परंतु यह कवि कार्य बहुत सहज नहीं है, क्योंकि कवि विचार के स्तर पर जिस तरह मौजूदा व्यवस्था के छल-छद्म से संघर्ष करता है, मनुष्य विरोधी प्रवृत्तियों का प्रतिरोध करता है, बिल्कुल उसी तरह से अपने काव्य शिल्प के माध्यम से भी इसी कार्यवाही को अंजाम देता है।'[46] जितेन्द्र की दीर्घकालीन कवि यात्रा भाषिक संरचना की दृष्टि से समृद्ध है। यह काव्य भाषा तमाम संभावनाओं से युक्त है और अनुकरणीय है। कवि के यहां शब्दों और अर्थ का सहभाव अनूठा है, जीवनबोध से युक्त है। विषय और भाषा की संपृक्ति दर्शनीय है। कवि का अनुभव संसार व्यापक

है इसीलिए रचनाओं में विविधता दिखाई देती है। यही बात जितेन्द्र के साथ अक्षरश:जुड़ी हुई है।

शब्दावली की दृष्टि से कवि जितेन्द्र का काव्य अत्यंत समृद्‌ध है। समय तथा समाज के बदलाव के दौर में समृद्‌ध शब्दावली आज और भी आवश्यक है। यह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि आज के तेज रफ्तार जीवन में शब्द सिमट कर रह गए हैं, अर्थ का अनर्थ हो रहा है। भाषाओं पर मंडराते संकट के कारण शाब्दिक विविधता कम हो रही है। मानवी मूल्य के विघटन के साथ शब्द भी अपना मूल अर्थ खो रहे हैं। ऐसे दौर में भी लोक शब्दावली, ग्रामीण-शहरी परिवेश आदि से जुड़ी शब्दावली जितेन्द्र के काव्य में मौजूद है। उम्मीद, उजास, पुतलियां, अंजुरी, सवेरा, मानुष-राग, जीवन धूप, रिश्ता, आंच, लोक और जिंदगी आदि कवि के प्रिय शब्द है।

कवि जितेन्द्र के काव्य में अंग्रेजी शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है। लैंपपोस्ट, इमरजेंसी, प्राइवेटाइजेशन, मल्टीनेशनल, मेट्रो, पेंसिल, जिम, स्टॉल, केबिन, रिटायर, प्लेटफार्म, स्टेशन, रोबोट, स्पेस, नेटवर्क पैकेज, एटीएम, इंडिया गेट, शोरूम, बोर्ड, फैशन, ड्रेस, चेंज, लिबर्टी, लोकर, पर्स, ड्राइवर, टाइपिस्ट, कैलेंडर, क्रेडिट कार्ड, एंकर, सेंसर, टॉकीज, थियेटर, कट, क्लब, हॉल, यूकेलिप्टस, फ्लैट्स, करंट, वायरिंग, लाइनमैन, सैल्यूट, हैडलाइट, नॉर्थ ब्लॉक, डायरी, टिफिन जैसे अंग्रेजी शब्द कवि के काव्य में प्रयुक्त हुए हैं।

उर्दू शब्दावली कवि के यहां देखी जा सकती है मसलन, शौकीन, दरम्यान, महफिल, मुकम्मल, मिन्नते, जायज, अजीज, कमीज, लगाम, अरसा, महकमा, हरकत, कस्बा, निगाह, हिसाब, हक, कायनात, जुल्फे, तनख्वाह, ऐतराज़, मुताबिक, महज, तकदीर, मजाक, ख्याल, इंतजार, इबादत, लिफाफा, अल्फिया, अखबार, बख्शना, इबादत, मनौतिया, इनाम, उस्ताद, इज्जत, आबरू आदि।

लोक संस्कृति से जुड़े मूल्य और संस्कारों के लिए प्रयुक्त की जाने वाली शब्दावली को जितेन्द्र के काव्य में देखा जा सकता है-बोरसी, खांची, सिवान, तरोई, कोहरा, गट्टा, लोकई, कौड़ा, कठुआ, सोह, टहका, भूजा, नेनुआ, सरपुतिया, गठरी, पेंग, बथुआ, मोथा, तरकारी, भात, ताख, दियाठी, पहरूआ, बिजुरी, सानी, पछुआ, धधाकर, चिरौरी, ऊसर, पियराई, दुआर, खरहरा, टक्कर, चमाचम, लोकना, पुरइन, मटियार, अंजोर, पलिहार, नाधकर, अडार आदि। कवि द्वारा लोक शब्दावली का व्यापक प्रयोग प्रतीकात्मक रूप में लोक संस्कृति विशेषता:भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को सहेजने का कार्य करती है। वर्तमान हिंदी कविता के अंतर्गत भाषिक संदर्भ में इसे एक योगदान की तरह देखा जाना चाहिए। यह भी महत्वपूर्ण है कि मानक हिंदी के अलावा हिंदी की विविध बलियो के शब्द यहां स्थान पाते हैं। उदाहरण स्वरूप भोजपुरी और अवधि के शब्द बहुलता से कवि के काव्य में मिलते हैं। कवि के यहां शब्द भंडार की कोई कमी नहीं है। मृगतृष्णा, अवसन्न, शब्दातीत, अरुणोदय, आदमकद, निरापद, गलबहियां, अठखेलियां, अंकवारी, ललछौह, गबरू, बेफिकिर, फुरसतिया, उजाड़, पुनर्नवा, प्रत्याशा, दुर्भिक्ष, प्रशांत, अंजुरी, नेपथ्य जैसे शब्दों का प्रयोग भी काव्य में बहुतायत में किया गया है।

वर्ण आवृत्ति भी कवि जितेन्द्र के काव्य भाषा की दृष्टिकोण से आकर्षक बनाती है-

"चांदनी रात में चमकता है खंडहर

चमकते हैं बालुका कण

चमकती है अंकवार भरती पेड़ों की टहनियां

चांदनी रात में

दाग़ साफ-साफ नहीं दिखते।"[47]

कवि जितेन्द्र ने अपने काव्य में मुहावरों और कहावतो तथा लोकोक्तियां का पर्याप्त प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से काव्य की लोकधर्मिता और प्रमाणिकता में वृद्धि हुई है। कुछ प्रयोग तो मौलिक है। अनेक कहावतें और मुहावरों को कवि के काव्य के अंतर्गत देखा जा सकता है-पलके बिछाना, आंखों में नींद, गोद भरना, मिन्नते करना, शरण देना, पलकों पर बिठाना, रिश्तो में आंच, चूर-चूर हो जाना, पाप लगना, चटकारे लेना, एकटक निहारना, बर्दाश्त से बाहर, क्षमा मांगना, आंख सेंकना, जुबान खोलना, सर के ऊपर से जाना, रोजी-रोटी तलाशना, हाल-चाल पूछना, झुक जाना, दुबक जाना, कैद करना, लापरवाह होना, आंखों से घूरना, मर्जी न होना, हक की लड़ाई, हिसाब मांगना, खुशी के आंसू, खिल उठना, हंसी आना, चौखट लांघना, छीन लेना, घबरा जाना, सांस फूलना, लाज बचाना, आंखें पथराना, उदास होना, चहचहाना, चक्की में पीसना, पाव फिसलना, कुंडली मिलाना रोक-टोक करना, स्वाभिमान से जीना, किलकारियां गुंजना, पुतलियां में झांकना, एक-दूसरे में घुल जाना, आंसू छिपाना, सर झुकाना, आसमान छूना, जी तोड़ कोशिश करना, लहू लोहान होना, अपनी शर्तों पर जीना, खुशी से झूम उठना, आंखें खोलना, मुंह छुपाना, पछतावा होना, लाचार होना, शुल की तरह चुभना, होस संभालना, करवट बदलना,आप बीती सुनाना, सपने सजोना, हौसला रखना, जर्जर होना, मोम की तरह पिघलना, काठ मार जाना, सम्मोहित होना, लजा जाना, प्रतीक्षा करना, गुम हो जाना, राह टोहना, दर-दर की ठोकरे खाना, कब्जे में रहना, बेधड़क समा जाना, पलक झपकते, तिल-तिल बुझना, आशाओं से भरना, बाहों में आकाश समाना, नमक हराम, संकोच करना, तालमेल बिठाना, हतप्रभ होना, लड़खड़ा जाना, जिद पर अड़ना, मन सहलाना, भाग्य का लेखा, सन्नाटा पसारना, विलीन हो जाना, आगोश में समाना, चुल्लू भर पानी, तिरोहित करना, माथे पर चढ़ना, चकित करना, ठेंगा दिखाना, उजड़ जाना, धराशयी होना, बिन घरनी घर भूत का डेरा आदि।

प्रत्येक कवि का कला तथा सौंदर्य को लेकर अलग दृष्टिकोण होता है। कला को लेकर जितेन्द्र का भी अपना नजरिया है। कवि का स्पष्ट मत है कि जहा कला कम हो जीवन खूब हो तभी कविता संभव हो पाती है। कवि कृत्रिम या बनावटी सौंदर्य के स्थान पर सहज सौंदर्य का पक्षधर है। 'नजर' शीर्षक कविता की पंक्तियां इस संदर्भ में देखी जा सकती है-

"जो बिल्कुल सादा दिखता है

रंग से परे

उसके भीतर भी होता है जीवन का रंग

बस बदलनी पड़ती है नजर।"[48]

कवि के यहां केवल कला के लिए कविता नहीं किन्तु जीवन के लिए कला है। 'कला' शीर्षक कविता को यहां देख सकते है-"आज दिन पर भटका/घूमता रहा बाजारों में ढूंढता रहा एक अदद दीया ऐसा/जिस पर कर सकें कारीगरी मेरी बेटी/मैं दिन भर ढूंढता रहा/एक दीया ऐसा/जिसमें कम हो कारीगरी कुम्हार की/शायद हो किसी दुकान पर ऐसा/जिसे रचने में कम मन लगा हो कुम्हार का/पर मैं लौट आया असफल हताश/मुझे नहीं मिला अभीष्ट दीया/और अब जो कहने जा रहा हूं मैं/उसे पर शायद यकीन न आए आपको/पर मैं कहूंगा यकीन मानिए/कि ज्यों ही उठता था मैं किसी दीये को/थोड़ा कम कलात्मक मानकर/त्यों ही बदल जाता था वह दीया/स्वप्न भरी दो आंखों में/और मैं हतप्रभ-सा बढ़ जाता था आगे।"[49]

कवि के यहां उत्कृष्ट बिंब-विधान है। यह बिंब-विधान कवि की एक विशिष्ट पहचान में सहायक है। त्र्यंबक नाथ त्रिपाठी के अनुसार "जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में बिंब अपने संधे रूप में मौजूद है। यहां प्रतीक बिंबो के प्रतिनिधि है। इनका प्रयोग बिंबो के एवज में होता है। कवि ने अपनी स्वीकृति के साथ नई

चेतना के बिंबावर्तन के लिए जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है वे कवि को अलग स्थान दिलाते हैं।"[50] कवि के यहाँ ऐसी बिंबधर्मिता हैं कि बिंब और विषय वस्तु को एक दूसरे से अलगाना मुश्किल है। 'धूप' और 'पांच पंक्तियों की पंक्ति' जैसी महत्वपूर्ण कविताएं इस दृष्टि से देखी जा सकती है। धूप कविता बिंब-विधान की दृष्टि से उत्कृष्ट है-"धूप/धूप किताबों के ऊपर है/या/भीतर कहीं उसमें/कहना/मुश्किल है इस समय/इस समय मुश्किल है/कहना/कि किताबें नहा रही है धूप में/या धूप किताबों में/पर यह देखना और महसूसना/नहीं मुश्किल/ कि मुस्कुरा रही है किताबें/धूप की तरह/और धूप गरमा रही है किताबों की तरह।"[51]

कवि जितेन्द्र के यहां कुछ बिंब तो ऐसे हैं जो एकदम अद्भुत है-

"रुको तो सही

क्षण भर अभी

महसूस तो लूं जरा

अनार के फूलों-सी

यह ललनछोह संजीवनी हसीं"[52]

बिंब विधान के प्रयोग से चित्रात्मकता का वह रूप यहां मिलता है कि मानों पल रुक-सा गया है-

"यह पल अकेला है

बहुत अकेला

कि उतार दिया तुमने

पुतलियों से

यह सांझ जो आने को अभी

ठिठकी खड़ी है

पीपल की पत्तियों के बीच

देखती-सी

कि तुम जाती हो।"[53]

हिंदी काव्य परंपरा में शीर्षस्थ कवियों की महत्वपूर्ण विशेषता है कि भाषा की संजीता तथा उत्कृष्ट बिंबो का समावेश। कवि भी जिस भाषा में अपने काव्य को रचते हैं वह भी इस विशेषता से युक्त है। सर्वेश सिंह के अनुसार "जितेन्द्र की संवेदनशील भाषा का प्रवाह उनकी कविता में आघांत बना रहता है और कविता का रूप विधान या कहें शिल्प भी कहीं खंडित नहीं होता। यह दरअसल वह तंतु है जो पाठक को लगातार उनकी कविता में अटकाए रहता है। उनकी कविताओं के दृश्य प्रवाह बड़ी ही मंथर गति से चलते हैं। कहीं-कहीं तो वे चित्र के प्रवाह को इतना स्टील कर देते हैं कि लगता है सिनेमा का कोई सीन देख रहे हो।"[54]

काव्य के अंतर्गत मिथकीय प्रयोग आसान नहीं। परंतु इतिहास बोध तथा गहन चेतना के बल पर कवि अपने काव्य में मिथकीय प्रयोग करता है। कवि का बराबर मानना है कि मानवीय समाज में प्रचलित मिथक खंडन-मंडल दोनों दृष्टि से उपयोगी होते हैं-"मैंने मिथक और इतिहास दोनों को अपनी कई कविताओं का उपजीव्य बनाया है। लेकिन यह अनायास नहीं है। यह मेरे कवि जीवन के आरंभ से है। मुझे लगता है कि मिथको और इतिहास के माध्यम से कई बार हम सिर्फ अतीत का मूल्यांकन नहीं करते, बल्कि अपने समय का भी करते हैं। कई मिथक हमारे भीतर अपराधबोध पैदा करते हैं तो कई नैतिक साहस भी। यह कवि की अपनी क्षमता पर है कि वह इसे अपनी रचना में किस तरह विन्यस्त करता है।"[55]

अपने मन के भाव को व्यक्त करने के लिए जितेन्द्र ने अनेक विधाओं को माध्यम बनाया है। 'गीत' भी उनमें से एक है। ऐसे में गीति तत्व का या शैली भी कवि जितेन्द्र के यहां देखी जा सकती है। जातीय संगीत की अक्षुण्ण परंपरा या अवधारणा का निर्वाह यहां है। 'पहाड़ सात:कविताएं', 'नाचने गाने का समय','एक नया गीत' कविताएं इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है।'पहाड़ सात: कविताएं' गीततत्व की दृष्टि से यहां देखी जा सकती है-

"ये पहाड़ है प्रिये!

देश की देह पर ढाल से

यहां गाती है युवतियां मौसम के गीत करते हुए काम

गाती है मेरे गांव के पहाड़ कितने सुंदर हैं

इन दिनों दृश्य कितना मनोहर है

ऐसे में फौजी पिया घर आ जाए

दिल में करार आ जाए

जीवन में बहार आ जाए।"[56]

ऋतुओं के आगमन पर अनेक गीत भारतीय परंपरा तथा हिंदी साहित्य में गाए जाते हैं। कवि मन इन्हीं परंपराओं में खुद को भी अभिव्यक्त करता है-

"लाल चुनरिया

ओढ़ सांवरिया

विचर रही है खेतों में

हरियर- हरियर फसलों में

पीयर-पीयर माटी में”[57]

हिंदी भाषा अनेक बोलियां से निर्मित हुई है। यही कारण है कि कवि जितेन्द्र जिस भी संदर्भ में हिंदी भाषा के संरक्षण की बात करते हैं बोलियों का बचाव भी उसमें अंतर्निहित होता है। इस संदर्भ में महेश पुनेठा की टिप्पणी देखी जा सकती है- “कवि के मन में अपनी बोली के प्रति गहरा लगाव है। महानगर में रहते हुए भी उनके मन का रसायन नहीं बदला है। कवि एक खालीपन महसूस करता है कि बहुत दिन हुए किसी के मुंह से नहीं सुने ‘लोक’ बोली के कुछ खास शब्द। उन्हें नहीं लगते कोई शब्द गवारु। वह अपने ‘लोक’ बोली के शब्द का उच्चारण कर अपने ही मन को हाथ देते हैं। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि भाषा के संस्कार मनुष्य के लिए उतने ही जरूरी है जितनी जरूरी होती है जड़े किसी वृक्ष के लिए। इसीलिए जितेन्द्र अपनी कविता में बार-बार लोक बोली के शब्दों का सहज-स्वाभाविक रूप में प्रयोग करते हैं। अपनी काव्य भाषा को दुरूह नहीं होने देते। उनकी भाषा कहीं भी संप्रेषण में बाधक नहीं बनती।”[58] कवि अप्रासंगिक काव्य रूढ़ियों, कृत्रिमता तथा बनावट से अलग एक नई परिपाटी पर चलते हैं और उसे भाषा का प्रयोग करते हैं जो यथार्थ को पूर्णता के साथ रेखांकित कर सके। दीपक प्रकाश त्यागी इस संदर्भ में लिखते हैं-“आज हिंदी कविता के सामने सबसे बड़ा संकट यह है कि जटिल परिवेश से जूझते हुए कविता स्वयं जटिल हो रही है। कुछ कवि तो ऐसे अबूझ कविता लिख रहे हैं, जिसे अर्थ निकालना है बहुत चुनौती पूर्ण है-भाषा से लेकर संवेदना तक। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्द लेकर कहूं तो यह व्यक्ति वैचित्र्यवाद जितेन्द्र के यहां नहीं है और इसका कारण है उनकी कविता का लोकतांत्रिक परिवेश। इसीलिए उनकी कविता सादगी एवं सहजता के सौंदर्यशास्त्र दोनों की ही अनुपम विशाल है। सामान्य से दिखते विषय के साथ भी कविता जो शकल लेती है, उनके संदर्भ बृहत्तर है और आज के लिए जरूरी भी।”[59] समाज,संस्कृति और राष्ट्र आदि के साथ-साथ काव्य और आलोचना में भी जितेन्द्र सदैव अतिक्रमण के विरुद्ध रहे हैं। भाषा की दृष्टि से भी

लोकतांत्रिक प्रणाली के सूत्रों को बहुलता से देखा जा सकता है। काव्य अभिव्यक्ति को लेकर निरंतर सचेत जितेन्द्र उसी भाषा का सहारा लेते हैं जिसमें संप्रेषण का गुण पर्याप्त हो। तत्कालीन बोध तो वहां स्पष्ट हो ही, भविष्य में भी वह प्रासंगिक रहे। जितेन्द्र की काव्य भाषा के बारे में कहा जाए तो वह यह कि "जितेन्द्र सादगी का सौंदर्यशास्त्र रचते हैं। इस सादगी में परंपरा और आधुनिकता दोनों का समन्वय है। सादगी का अनूठा सौंदर्य है-'सादगी' का यहां एक नया काव्य सौंदर्य है जो शायद हिंदी की समकालीन कविता में जितेन्द्र के माध्यम से पहली बार संभव हो रहा है।"[60]

जितेन्द्र श्रीवास्तव ने अपने स्त्री संबंधित काव्य के अंतर्गत जिस भाषा और शिल्प की योजना की है वह प्रभावि हैं। कवि की भाषा स्त्री के दुख-दर्द को अच्छे से व्यक्त करती है। उनकी भाषा भावात्मक एवं कथात्मक है। उनके काव्य में स्त्री के प्रति आदरणीय और मानवीय भाषा का उपयोग हुआ है। बेटियों से संबंधित जितेन्द्र की जो कविताएं है उसमें वात्सल्य रस काफी प्रभावी है। परंपरागत प्रतीकों और बिंबो के साथ-साथ प्रत्येक वर्ग के नए प्रतीक कवि ने गढ़े हैं। सोनचिरई, रामदुलारी, परवीन बॉबी, पुकार, संजना तिवारी, रमिया जैसी कविताओं के स्त्री पात्र जो न केवल आज के समय में पाठकों की चेतना को सोचने के लिए मजबूर करते हैं किंतु आने वाली पीढ़ियों को भी प्रतीकात्मक रूप से प्रभावित करेंगे। स्त्री विमर्श की क्रांति को पल्लवित करने वाली उनकी कविताएं स्त्री विमर्श की क्रांति को आगे भी पल्लवित करती रहेगी।

संदर्भ

1. जितेन्द्र श्रीवास्तव, स्त्रियां कहीं भी बचा लेती है पुरुषों को,पृ.10
2. वही, पृ.12
3. वही, पृ.13
4. वही, पृ.15
5. वही, पृ.16
6. वही, पृ.22
7. जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा,पृ.88
8. वही, पृ.89
9. जितेन्द्र श्रीवास्तव, स्त्रियां कहीं भी बचा लेती है पुरुषों को,पृ.29
10. वही, पृ.31
11. वही, पृ.33
12. वही
13. वही, पृ.38
14. वही, पृ.39
15. जितेन्द्र श्रीवास्तव, इन दिनों हालचाल, यश पब्लिकेशन,पृ.40
16. जितेन्द्र श्रीवास्तव, स्त्रियां कहीं भी बचा लेती है पुरुषों को,पृ.40-41
17. वही
18. वही, पृ.42
19. जितेन्द्र श्रीवास्तव, बिल्कुल तुम्हारी तरह,पृ.62
20. वही, पृ.62-63
21. वही
22. वही, पृ.49-50
23. वही
24. वही, पृ.54

25. वही, पृ.49-50
26. वही, पृ.56
27. वही
28. जितेन्द्र श्रीवास्तव, इन दिनों हाल-चाल,पृ.19
29. उदय नारायण तिवारी, भोजपुरी भाषा और साहित्य,पृ.311
30. जितेन्द्र श्रीवास्तव इन दिनों हाल-चाल,पृ.21
31. वही, पृ.23
32. जितेन्द्र श्रीवास्तव, स्त्रियां कहीं भी बचा लेती है पुरुषों को,पृ.66
33. वही, पृ.86
34. वही, पृ.87
35. वही, पृ.103-105
36. संपा.डॉ. भानुप्रताप सिंह, जनसंदेश टाइम्स, लखनऊ, 25 मार्च, 2019 पृ.15
37. सपां. प्रो. सत्यकाम, समीक्षा, अक्टूबर-मार्च, 2017, पृ.59
38. संपा.डॉ. भानुप्रताप सिंह, जनसंदेश टाइम्स, लखनऊ, 25 मार्च, पृ.16
39. वही
40. सपां.अरुण होता, सृजन का आयतन,पृ.5
41. जितेन्द्र श्रीवास्तव, उजास, सेतु प्रकाशन,फ्लैप से
42. जितेन्द्र श्रीवास्तव, बिल्कुल तुम्हारी तरह,पृ.77
43. सपां. अरुण होता, सृजन का आयतन,पृ.222
44. जितेन्द्र श्रीवास्तव, बिल्कुल तुम्हारी तरह,पृ.28
45. वही, पृ.92
46. सपां. अरुण होता, सृजन का आयतन,पृ.61
47. जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा (उजास),पृ.33
48. जितेन्द्र श्रीवास्तव, कायांतरण,पृ.31
49. सपां. कमलेश वर्मा/सुचिता वर्मा, बेटियां,पृ.55-56

50. सपां.श्रीप्रकाश शुक्ल, परिचय,पृ.49
51. जितेन्द्र श्रीवास्तव, कायांतरण,पृ.9
52. जितेन्द्र श्रीवास्तव, बिल्कुल तुम्हारी तरह,पृ.11
53. वही, पृ.9
54. सपां. प्रो.सत्यकाम, समीक्षा,अक्टूबर- मार्च,2017,पृ.57
55. जितेन्द्र श्रीवास्तव, बिल्कुल तुम्हारी तरह,पृ.45
56. जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनभै कथा (उजास),पृ.51
57. जितेन्द्र श्रीवास्तव, बिल्कुल तुम्हारी तरह,पृ.20
58. असुविधा (समकालीन कविता की देहरी); महेश पुनेठा, 'जीवन के सपनों और उजास भरी आंखों के कवि: जितेन्द्र श्रीवास्तव' 24 दिसंबर, 2014
59. सपां.अरुण होता, सृजन का आयतन,पृ.102-103
60. जितेन्द्र श्रीवास्तव, कायांतरण,फ्लैप से